भारतीय साहित्य के निर्माता

बाबा फ़रीद

बलवंत सिंह आनंद





अस्तर पर छपे मूर्तिकला के प्रतिरूप में राजा शुद्धोदन के दरबार का वह दृश्य, जिसमे तीन भविष्यवक्ता भगवान बुद्ध की माँ–रानी माया के स्वप्न की व्याख्या कर रहे हैं, इसे नीचे बैठा लिपिक लिपिबद्ध कर रहा है। भारत में लेखन–कला का संभवतः सबसे प्राचीन और चित्रलिखित अभिलेख।

नागार्जुनकोण्डा, दूसरी सदी ई.
सौजन्य : राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली।

भारतीय साहित्य के निर्माता

बाबा फ़रीद

लेखक

बलवंत सिंह आनन्द

अनुवादक

जगदीश

साहित्य अकादेमी

Baba Farid : Hindi translation by Jagadish of Balwant Singh Anand's monograph on medieval saint poet of Punjab in English. Sahitya Akademi, New Delhi (2019) ₹50/-

बलवंत सिंह आनंद (1920-2013) : लेखक
जगदीश : अनुवादक

विधा : विनिबंध
साहित्य अकादेमी द्वारा प्रकाशित

प्रथम संस्करण : 1987
पुनर्मुद्रण : 1991, 1999, 2002, 2012, 2016 एवं 2019
ISBN 978-81-260-1582-5
मूल्य : पचास रुपये

साहित्य अकादेमी

प्रधान कार्यालय : रवीन्द्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली 110 001
secretary@sahitya-akademi.gov.in | 011-23386626/27/28
विक्रय अनुभाग :'स्वाति', मंदिर मार्ग, नई दिल्ली 110 001
sales@sahitya-akademi.gov.in | 011-23745297, 23364204
कोलकाता : 4, देवेंद्रलाल ख़ान रोड, कोलकाता 700 025
rs.rok@sahitya-akademi.gov.in | 033-24191683/ 24191706
चेन्नइ : मेन बिल्डिंग, गुना बिल्डिंग्स (द्वितीय तल), 443(304), अन्नासालइ, तेनामपेट, चेन्नई 600 018
chennaioffice@sahitya-akademi.gov.in | 044-24311741
मुंबई : 172, मुंबई मराठी ग्रंथ संग्रहालय मार्ग, दादर, मुंबई 400 014
rs.rom@sahitya-akademi.gov.in | 022-24135744/24131948
बेंगळूरु : सेंट्रल कॉलेज परिसर, डॉ. बी. आर. आंबेडकर वीथी, बेंगळूरु 560 001
rs.rob@sahitya-akademi.gov.in | 080-22245152, 22130870

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर एण्ड प्रिंटर्स, ट्रोनिका सिटी, ग़ाज़ियाबाद।

वेबसाइट : http://www.sahitya-akademi.gov.in

विषय-सूची

आमुख

1973-'74 का दिल्ली में शीतकाल स्मरणीय रहेगा। वही अवसर था जब शेख़ फ़रीद-उद्-दीन, गंज-ए-शकर की आठवीं जन्म-शताब्दी मनायी गयी। इस समारोह का श्रेय पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, को जाना चाहिए। वहीं से बाबा फ़रीद पर दिल्ली में एक अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार आयोजित किया गया। इतिहासज्ञ, विद्वद्गण, और फ़रीद के काव्यप्रेमी इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में एकत्रित हुए और तीन दिन तक फ़रीद के जीवन और कृतित्व के विभिन्न पक्षों पर विचार-गोष्ठी चलती रही। समरुचि के विचारशील लोगों का सम्मेलन था, इस लिए स्वभावतः भारतीय एवं अन्यान्य देशों के विद्वानों में मैत्री-सम्बन्ध पुष्ट करने में सहायक हुआ। हम लोगों के लिए तो, जो बाबा फ़रीद के श्लोकों का समादर करते आये और जब-तब उन्हें गा तक उठते, यह अवसर एक सुअवसर बना। क्योंकि यहाँ सूफ़ीवाद के अनेक ऐसे पक्षों से अवगत हो सके जो फ़रीद की रचनाओं में निहित होते भी अपरिचय में रह आये। एक सुखानुभव यह भी हुआ कि ख्वाजा निज़ामुद्दीन चिश्ती के मज़ार के सामने स्थित चिश्ती कल्चरल सेंटर में आयोजित फ़रीदी लंगर [मध्याह्न भोजन] में सम्मिलित हो सके। संयोजकों ने भोजन से पूर्व मनोरम कार्य-क्रम और रखा था। इसके अन्तर्गत दिवंगत सन्तों के सम्मान में प्रार्थनाएँ की गयीं और चिश्ती सिलसिले की सुपरिचित भावनायुत शैली में क़व्वालियाँ हुईं। संगोष्ठी और सम्बन्धित कार्यक्रम से यह जानकारी भी उभरकर आयी कि हमारे देश की मिश्र संस्कृति में फ़रीद का योगदान कितना है।

मुझे, इसलिए, एक सुखद आश्चर्य ही हुआ जब संगोष्ठी सम्पन्न होने के तुरन्त बाद बाबा फ़रीद पर एक विनिबंध लिख देने के लिए साहित्य अकादेमी का आमन्त्रण मिला। इससे अधिक अवसरोचित और प्रिय क्या हो सकता था! किन्तु पूरा करके देने की अन्तिम तिथि ने काम में एक अत्यावश्यकता का तत्त्व और जोड़ दिया था। जो हो, स्वीकार करके मुझे प्रसन्नता ही हुई। दो कठिनाइयाँ अवश्य सामने आयीं। एक यह कि कवि के जीवन से सम्बन्धित प्रामाणिक सामग्री बहुत कम उपलब्ध थी; और दूसरी यह कि उनकी रचनाओं के प्राप्त अनुवाद मूल के प्रति न्यायकर

नहीं थे। कविता का तो यों भी सम्पूर्णता के साथ एक भाषा से दूसरी में रूपान्तर नहीं किया जा सकता। कारण, काव्य की भावनागत अर्थ-छटाओं और सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि के साथ उसके सहज सम्बन्ध का पर-देश की भाषा में प्रतिरूप नहीं होता; विशेषकर जब एक भाषा पूर्व के क्षेत्र की हो और दूसरी पश्चिम के। फ़रीद की रचनाओं का भाषान्तर मैकॉलिफ़ ने और गोपाल सिंह ने किया है। मैकॉलिफ़-कृत भाषान्तर बहुत अधिक शाब्दिक है। कहीं-कहीं तो धर्म एवं अध्यात्म विहित गूढ़ार्थ खो तक रहे। गोपाल सिंह का अनुवाद अपेक्षया अधिक भावशील है; पर जैसे यहाँ सभी प्रकार की स्वच्छन्दता बरती गयी हो और परिणामतः वास्तविक लक्ष्य प्रायः चूक रहा। कुछ रचनाओं का अनुवाद खुशवन्त सिंह और गुरबचन सिंह 'तालिब' ने भी किया है। ये उन पहलों से ज़रूर अच्छे हैं, पर यहाँ अभी शेष रचनाओं का अनुवाद होकर सामने आना रहता है। मुझे इसलिए बहुतकर मैकॉलिफ़ के ही अनुवाद का सहारा लेना पड़ा है। अवश्य, जहाँ जो चूक इसमें प्रतीत हुई उसका उपाय, टिप्पणी और मूल रचना की विश्लेषणा द्वारा, किया है। आशा है, फ़रीद के श्लोकों में निहित संगीत एवं गूढ़ार्थ का आभास पाठकों को मिल सकेगा।

प्रस्तुत विनिबन्ध के द्वारा प्रयत्न रहा है कि अरब देश और ईरान में सूफ़ीवाद के विकास, तथा विभिन्न सूफ़ी सिलसिलों के रूप में उसके भारत में आगमन का एक संक्षिप्त विवरण सामने आ सके। प्रयत्न यह भी रहा है कि शैख़ फ़रीद के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के अतिरिक्त, सिक्खों के धर्मग्रन्थ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में समाविष्ट उनकी रचनाओं का काव्यगत मूल्यांकन भी उपस्थित किया जाये। आशा है यह विनिबन्ध शैख़ फ़रीद-उद्-दीन, गंज-ए-शकर, के व्यक्तित्व और कृतित्व की एक समुचित जानकारी प्रस्तुत कर सकेगा।

41, पश्चिमी मार्ग,
वसन्त विहार,
नयी दिल्ली

बलवन्त सिंह आनन्द

1

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

रहस्यवाद सभी धर्मों का सार-मर्म है । इसका उद्भव मनुष्य की अन्तरात्मा के परम सत्यता के साथ संयुक्त हो पाने की तीव्र एवम् व्यापक लालसा से होता है । जो लोग बहुत धर्मनिष्ठ होते हैं उनके लिए तो रहस्यवादी अनुभूति-रहित धर्म ही अर्थहीन रहता है । प्रार्थना, उपवास और तीर्थाटन (नमाज़, रोज़े और हज्ज) आदि धर्म के औपचारिक और निरे शास्त्र-सम्मत पक्ष इन्हें सन्तोष नहीं दे पाते । इन्हें तो रहती है ललक धर्म के गहन और गूढ़ सत्यों को आत्मसात् करने की । यही कारण है कि ऐसे लोग स्वभावतः रहस्यवादी चिन्तन और अनुभूतियों के प्रति उन्मुक्त होते हैं । जैसा अन्य धर्मों में रहा, रहस्यवाद इसलाम में भी दूर-भीतर तक बद्धमूल था, तो भी विकास उसका बाद में ही सम्भव हो सका । जिस रूप में पैग़म्बर मुहम्मद द्वारा इसलाम का परिवर्तन हुआ, उसका अंग यह नहीं था । इसलामी रहस्यवाद तो कहलाता भी 'सूफ़ीवाद' है । रहस्यवाद का इसलाम में जो स्वरूप है उसके प्रादुर्भाव, विकास, तथा विभिन्न सूफ़ी सिलसिलों के रूप में उसके भारत में आगमन को समझ सकने के लिए यह जानकारी अवश्य है कि : इसलाम के आधारभूत विचार-सिद्धांत क्या थे और क्या थीं उसकी वे अन्तर्निहित प्रवृत्तियाँ और विशिष्टताएँ जो रहस्यवादी चिन्तन को आधार प्रदान कर सकीं, कितनी व्यापक थी मान्यता और लोकप्रियता रहस्यवाद के प्रति ईरान में, विशेष-कर वहाँ के विद्वानों और कवियों में, और क्या था वह समूचा घटनाक्रम जो इस-लाम को और, साथ में मौलवियों-आलिमों और सूफ़ियों को भारत की भूमि पर ले आया । प्रकट ही, ऐसा अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए, जो हज़ार वर्ष से ऊपर के इतिहास और दूर-दूर बसे हुए स्थानों को अपने में समोये हुए हो, कई-कई जिल्द अपेक्षित होंगी । तो भी आवश्यकता एक ऐसी संक्षिप्त रूपरेखा की भी रहेगी ही जो विभिन्न सूफ़ी कवियों की कृतियों से सूफ़ीवाद को समझने के लिए एक पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर सके ।

इसलाम एक ऐसा धर्म है जिसकी परिधि में जीवन का प्रत्येक पक्ष समाया होता है : आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक । 'क़ुरान का तो विषय

ही है : मनुष्य अपने समग्र रूप में । मानव जीवन के हर पक्ष को इसमें लिया गया है : उसके विश्वास, उसके मूल्य-मान, पूजा-आराधन विधि, आचरण के नियम, सामाजिक विधि-विधान, शासन पद्धति, और आर्थिक जीवन का नियमन ।' यह सुविस्तृत व्यवस्था इसलाम के दो मूलभूत सिद्धान्तों की देन थी : कि ईश्वर एक है, और कि ईश्वर ही लोक और परलोक का रचयिता है । क्योंकि ईश्वर वही एक और एकमात्र है, इसलिए वही सर्वोच्च है और वही समस्त प्राणियों में सर्वसत्ताधारी । उसके नियम और निर्णय चरम-परम हैं, उसका ही न्याय अन्तिम शब्द । इसलाम में अवर देवी-देवताओं के लिए कोई स्थान नहीं, न ही उसके न्याय में किसी की निवेदना ही चल सकती है । वह एक मात्र उत्पत्तिकर्ता है और स्वयं एकमात्र स्वयंभू । अन्य जो कुछ भी है, सब उसी का रचा हुआ है । अतः सर्वथा उसकी इच्छा के अधीन । नबी या पैग़म्बर तक भी मनुष्य-जैसे ही गिने जाते हैं । उस एकमात्र का आदेश इन्हें भी मानना होता है । इनका महत्त्व केवल इसलिए है कि ये उस एक के सन्देश-वाहक होते हैं, और उसकी कृपा एवं अनुग्रह के पात्र । इसी कारण इन्हें आदर-मान देना होता है और इनका अनुगमन किया जाता है ।

इसलाम के स्रष्टा और उसकी सृष्टि के बीच स्पष्ट भेद रहता है । दोनों के अस्तित्व-लोक ही अलग-अलग होते हैं : ईश्वर स्वर्ग में वास करता है, मनुष्य धरती पर या, मृत्यु के उपरान्त, स्वर्ग या नरक में । दोनों का न परस्पर सम्मिलन होता है, न विलयन । जो है ही ससीम उसका निस्सीम में विलयन होगा ही कैसे !

अन्य किसी भी धर्म से भिन्न, इसलाम एक 'उद्घाटित' धर्म है । क़ुरान में ऐसे 'सन्देशों' का उल्लेख आया है जो ईश्वर ने मुहम्मद पर समय-समय पर उद्घाटित किये । इस प्रकार जब कभी कोई आयत उद्घाटित की गयी तो मुहम्मद के आदेश पर लिपिकों द्वारा तत्काल लिपिबद्ध कर ली गयी । क़ुरान, इस प्रकार स्वयं ईश्वरीय शब्द है और इसलिए दिशा-निर्देश एवं न्यायोचितता की दृष्टि से मुसलमानों के लिए सर्वोपरि प्रमाण । ये उद्घाटन ही आध्यात्मिक और सांसारिक जीवन की आचार-संहिता भी प्रस्तुत करते हैं । इसका ही पालन और प्रवचन किया जाना था, इसी के अनुसार मनुष्य की जीवनचर्या होनी थी । लोक समाज के समूचे सामाजिक और राजनीतिक जीवन का इसे अंग बनाना था । अन्य-अन्य देशों में भी इसीलिए इस सन्देश का प्रचार-प्रसार आवश्यक हुआ । और स्वयं मुहम्मद का सबसे अधिक यही कर्तव्य हुआ कि इस सन्देश को लोगों तक पहुँचायें और उसके अर्थ और आशय को स्पष्ट करें । कारण, कि वही तो नेता थे, और उन पर ही तो ईश्वरीय आदेश प्रकट हुए । मुहम्मद उत्साह और निष्ठापूर्वक इस काम में जुट भी गये । उन्होंने एक नये समाज का संगठन किया, और एक नये धर्म का प्रवर्तन, जो क़ुरान में प्रतिपादित नियम-सिद्धान्तों पर आधारित था । निःसन्देह मुहम्मद एक

क्रान्तिकारी थे। उन्होंने अरब जाति के जीवन-स्वरूप को ही बदल दिया, और कुछ ऐसा प्रेरित किया उन्हें कि युद्ध किये बिना ही एक के बाद एक बड़े-बड़े भू-क्षेत्र विजित होते गये और दूर-दूर तक इसलाम का झण्डा फहरा चला।

आश्चर्य की बात नहीं कि मुसलिम जाति क़ुरान को ही इसलाम का आदि-स्तम्भ मानती है।

मुहम्मद की जीवनी के विषय में हमारी जानकारी का आधार क़ुरान में आये कुछ स्वल्प उल्लेख हैं और वे हैं कथा-अनुश्रुतियाँ (हदीस), जो उनके सहचरों और अनुयायियों ने बनाये रखीं और पीढ़ी के बाद पीढ़ी मौखिक चलती आयीं। इन अनुश्रुतियों पर ही जीवन का एक आदर्श स्वरूप निर्धारित हुआ जिसे 'सुन्नाह' कहते हैं।

क़ुरान और ये कथा-अनुश्रुतियाँ मिलकर ही 'इसलामी-शरीआत' का उद्गम बनीं। यही मूल आधार हुई नियम-विधानों की उस संहिता का जो प्रत्येक मुसलिम के समूचे जीवन-स्वरूप की संचालना करती है। इस प्रकार, क़ुरान और सुन्नाह जीवन के आध्यात्मिक पक्षों पर ही दृष्टि नहीं रखतीं, मनुष्य के सामाजिक आचरण-व्यवहार की पूरी इकाई ही उनका विषय रहता है।

और क्योंकि मनुष्य से अपेक्षित है कि वह पूर्ण बने, उसका सृष्टि में स्थान भी सबसे ऊँचा माना गया। उसे इच्छाशक्ति और बुद्धिबल दोनों प्रदान किये गये, जिसके सहारे वह ज्ञान प्राप्त कर सका। और फिर इस ज्ञान के द्वारा असीम शक्ति। बुद्धि-बल मनुष्य को सक्षम कर सका कि प्रकृति की विभिन्न शक्तियों को पहचाने और उनका अपने लिए उपयोग करे। मनुष्य को विवेचना शक्ति भी प्रदान की गयी है। इससे वह भले और बुरे में चुनाव कर पाता है, जो अन्ततःनैति-कता का आधार बन उठता है। ये तमाम शक्तियाँ एक दिन उसे पूर्णता (तज़किया) उपलब्ध कराती हैं। शरीअत का यही अन्तिम लक्ष्य है। मनुष्य के कुछ अपने भी दायित्व हैं ईश्वर के प्रति : उसके प्रति प्रेम, उसका प्रभुत्व स्वीकारना, उसकी उपासना और विनम्रता-पूर्वक उसके आगे सिर नवाना।

मृत्योपरान्त जीवन सम्बन्धी इसलामी धारणा बहुत सीधी-सादी है। जीवन का रूप आदि सभी तब, मृत्योत्थान के दिन 'कर्मों का लेखा' ले लिये जाने पर, जैसा ईश्वर का निर्णय हो, उस पर निर्भर करता है। मृत्यु के बाद आत्मा उस समय तक एक मध्यवर्ती अवस्था में रहती है जब तक कि 'रोज़े-जज़ा' (कर्मों का लेखा-जोखा लिये जाने का दिन) न आये और हरेक को अपनी 'जज़ा' हासिल न हो जाये। उसके बाद तो जीवन का स्वयं अपना सही रूप ही रहता है : कहीं स्वर्ग में, ईश्वर के साथ सम्पृक्त—अवश्य वेदान्ती दार्शनिकों के भाव में उसके अंश रूप में नहीं। निर्वाण का सिद्धान्त, अर्थात् ससीम का निस्सीम में विलय इसलाम को मान्य नहीं।

क़ुरान द्वारा निर्धारित जीवन के धार्मिक स्वरूप पर भी दो शब्द कह दिये जायें। धार्मिक जीवन का प्रारम्भ यहाँ 'कल्मे' से होता है: 'ला इलाह् इल्ल अल्लाह् मुहम्मद रसूल अल्लाह् !' अर्थात् अल्लाह् एक है, केवल; और मुहम्मद उसका रसूल (पैग़म्बर : सन्देशवाहक) है। मुसलमान के लिए ये दो बातें ही इसलाम का मूलतत्त्व हैं : ईश्वर के एकत्व में निष्ठा, और मुहम्मदके पैग़म्बर होने को मान्यता। आवश्यक इसके अतिरिक्त यह भी है कि फ़रिश्तों और अन्य दूतों के प्रति भी विश्वास हो, और रोज़े-जज़ा, वहिश्त और दोज़ख़ के प्रति भी। भूलना न होगा कि ये निष्ठा और विश्वास इहलोक और परलोक के जीवन के लिए अनिवार्य थे। उस 'एक खुदा में ईमान' के अतिरिक्त, हर मुसलमान से अपेक्षित है कि दिन में पाँच वक्त नमाज़ अदा करे, अपनी कमाई का एक निश्चित अंश 'ज़कात' (दान) के रूप में दिया करे, हर साल रमज़ान के महीने हर दिन रोज़ा (अनाहार) रखे, और जीवन-काल में एक बार मक्के की तीर्थयात्रा ज़रूर करे। ये सारे कृत्य आवश्यक हैं; किन्तु ईश्वर की दृष्टि में अपना सारा अर्थ खो रहते हैं यदि आचरण शुद्ध और जीवन नैतिक नियमों के अनुसार न हो।

अब इसलाम और रहस्यवाद के परस्पर सम्बन्ध पर आयें। इसलामी रहस्य-वाद या, जैसा उसका नाम पड़ा, सूफ़ीवाद वास्तव में तप और त्याग के रूप में प्रकट हुआ। प्रारम्भिक सूफ़ी सभी तपस्वी थे। मुहम्मद के कुछ साथियों ने भी, उनके रहते-देखते, सांसारिकता को तिरस्कारा और कठोर-संयमी जीवन को अपनाया। इनकी दृष्टि में सांसारिक सुख हेय थे और स्वेच्छा-पूर्वक निग्रही जीवन वरेण्य। निग्रह और तप ही जैसे सूफ़ी जीवन का सार लक्षण बन चले थे। सूफ़ी लोग 'तौबः' (अनुताप) और 'तवक्कुल' (ईश्वर निष्ठा) पर विशेष बल देते। उन की तो प्रेरक धारणा ही यह थी कि ईश्वर सर्वोपरि है, अनुभवातीत। हिजरी दूसरी शती के आते-आते यह सूफ़ीवाद एकेश्वरात्मक आध्यात्मिकता का रूप ले चला था। इसके प्रमुख तत्त्व दो थे : ईश्वर-भय और रोज़े-जज़ा (लेखे-जोखे का दिन) पर ईश्वर के प्रेमाराधन पर, तपोनिष्ठ होते हुए भी, इन सूफ़ियों ने सदा बल दिया है। महिला सूफ़ी रबि'या (निधन 185/801) ने इस प्रेमाराधन को बड़े सुन्दर रूप में व्यक्त किया है : 'इतना अन्तर्लीन कर लिया है अपने में ईश्वर-प्रेम ने मुझे कि अब भीतर हृदय में किसी और के भाव के लिए स्थान ही नहीं।' इनके नाम के साथ तो ईश्वर-प्रेम का सिद्धान्त ही जुड़ गया था। अपनी काव्य-रचनाओं में इन्होंने एक रहस्यवादी और उसके प्रीतम प्रभु के सम्बन्ध को व्यक्त करने में मान-वीय प्रेम-प्रणय की भाषा तक का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है। आगे चलकर तो अरबी और फ़ारसी दोनों भाषाओं में यह एक प्रथा ही बन गयी।

यह भी उल्लेख कर देना संगत होगा कि इसलामी विधि-नियमों द्वारा निषिद्ध होते हुए भी, अनेक साहसी आत्माओं में उस परम सत्यता को जान लेने की लगन

थी। इनकी उत्कट इच्छा थी कि उस चरम-परम सत्यता की प्रतीति इन्हें स्वयं को सीधे हो। ये लोग आध्यात्मिक ज्ञान-बोध के लिए रहस्यवादी चिन्तन और अनुभूति की दिशा में दत्तचित्त हुए। इन्हें क़ुरान और हदीस के धर्म-विहित और औपचारिक पाठ नाम को ही सन्तोष देते। यहाँ तो सारा बल नमाज़, रोज़े और हज्ज पर ही दिया जाता मिलता। पर एक विषय में हम निर्भ्रम रहें। सूफ़ियों ने अपने सनातन धर्म को न कभी त्यागा न अमान्य किया। ये सब बड़े धर्मनिष्ठ थे; केवल धर्म का निरा नैतिक और आचारवादी दृष्टिभाव इन्हें अपर्याप्त लगता। इनमें थी एक आकुल एषणा कि स्वयम् पराप्राकृतिक, आत्म-विषयक तक पहुँच सकें। ये लोग हृदयगत शुचिता और मनोगत अनुशासन पर विशेष बल देते और आग्रह करते कि आध्यात्मिक समागम में धर्म-नियामकों द्वारा चलाये हुए निषेध-कथनों का कोई उपयोग नहीं रहता। ये तो अस्तित्व के ही भिन्न आयामों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते थे, जो सम्भव ही तब होता जब पाँचों (ज्ञानेन्द्रियाँ) इन्द्रियाँ निरुद्ध हों। फिर तो वहाँ केवल अपना अंतर्जगत् होता, अपना आत्मलोक मात्र, जो बाह्य-जगत् की अपेक्षा अधिक अनुकूल भी रहता और संपोषक भी। इस अंतर्जगत् में ही हो पाता ज्ञान उस नस्सीम का : कह लें उसे अन्तयुक्त का अंतमुक्त में विलय, चाहे परम सत्यता की विद्यमानता का यथार्थज्ञान-बोध। यही होता परमानन्द भी, यही संपूर्ति उस चरम परम 'केवल' के साथ तदाकार हो जाने की मानवीय एषणा की। यहीं हो जाता है अन्त आध्यात्मिक अभीप्सा का। आगे तो रहता है निरा अवाच्य, अन्तर्व्याप्त।

यहीं यह भी स्पष्ट कर दें कि 'सूफ़ी' शब्द मूल 'सूफ़' शब्द से आया, जिसका अरबी में अर्थ 'ऊन' होता है। अरब देश और ईरान में सामान्य लोग भी रेशम के या सूती वस्त्र पहना करते, ऊन के वस्त्र केवल ये तपस्वी सूफ़ी ही पहनते। बाबा फ़रीद तो अपने एक श्लोक में अपने बारे में कहते भी हैं कि 'वह तो कँबली लपेटे महज़ एक दरवेश हैं।' कुछ लेखकों का सुझाव है कि यह 'सूफ़ी' शब्द यूनानी शब्द 'सोफ़ोस' से आया, जिसका अर्थ आत्मिक ज्ञान अथवा आध्यात्मिक ज्ञान होता है। इस प्रकार, 'सूफ़ी' वह हुआ जो आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा 'परम ज्ञान' प्राप्त कर चुका, अथवा उस दिशा में प्रयत्नशील है। एक और भी व्याख्या मिलती है कि 'सूफ़ी' शब्द का अर्थ 'शुद्ध' होता है, इसलिए वही व्यक्ति सूफ़ी कहलायेगा जिसने हृदयगत शुचिता प्राप्त कर ली है। इन सब व्याख्याओं में सबसे अधिक ग्राह्य 'ऊनी वस्त्रधारी तपसी-वैरागी' की ही बैठती है, जो लोक-संसार से अपने को समेटकर ईश्वर के साथ सम्पृक्त हो पाने की साधना में एकान्तवासी हो चुका है।

सूफ़ियों को अपने रहस्यवादी आस्था-विश्वास के लिए प्रेरणा स्वयं क़ुरान से मिली, या फिर पैग़म्बर की सुनायी हुई विभिन्न अनुभूतियों से। पैग़म्बर ने

यद्यपि बल प्रमुख रूप से सदा 'शरीअत' (कर्मकाण्ड सम्बन्धी नियमों) पर दिया, किन्तु क़ुरान को देखने से प्रत्यक्ष हो जाता है कि उसमें आयतें ऐसी भी हैं जिनका सम्बन्ध 'तरीक़त' (रहस्यवादी मार्ग) और 'हक़ीक़त' (आत्मिक ज्ञान) से है। ऐसी भी आयतें हैं जहाँ उस सर्व-शक्तिमान् की उस अबोधगम्य गति-मति और रहस्यमयता का उल्लेख हुआ है, जो उसकी शक्ति और प्रभुता में ओत-प्रोत रहती हैं एवम् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को व्यवस्थित सक्रियता में बनाये रखती हैं। कितना व्यापक और अंगीकारी प्रेम है उसमें मानव के लिए कि चाहते ही कोई भी उस तक आप पहुँच सकता है। क़ुरान में और भी कितने-कितने गुण विशेष बताये गये हैं उसके जो संकेत करते हैं कि कैसे उस सर्वशक्तिमान् के साथ एकसूत्र हुआ जा सकता है। किन्तु सबसे अधिक तो मुहम्मद के अपने रहस्योद्घाटन थे जिनसे सूफ़ियों का विश्वास बँधा कि ईश्वर के साथ सीधा सम्पर्क सम्भव है। खुदा अगर मुहम्मद के साथ बात कर सका, तो निश्चय ही उनसे भी करेगा जो उसी रास्ते आगे बढ़ें या किसी और रास्ते उसकी खुशी हासिल कर सकें। दूसरे, पैग़म्बर के 'मेराज' (आसमान में जाकर खुदा से मिलना) को भी सूफ़ियों ने बड़ा महत्त्व दिया है। 'हदीस' में यह कथा विस्तार के साथ दी हुई है: जब 'बुरक़' नामक उड़नेवाले घोड़े पर हज़रत मुहम्मद को सातवें आसमान पर ले जाकर अल्लाह-ताला के हुज़ूर में पेश किया जाता है।

हदीस में ही एक अन्य स्थल पर आता है कि मुहम्मद ने एक रात अल्लाह-ताला की हाज़िरी में बितायी। अल्लाह का ही उन्हें आदेश भी हुआ कि 'धर्म-संगत नियम-व्यवस्था की स्थापना के लिए' धरती पर लौट जायें। क़ुरान में और भी कई अवसरों का उल्लेख हुआ है जब खुदा ने मुहम्मद से खुद बात की।

ईश्वर के साथ इस प्रकार का सीधा, प्राय: निकट का, सम्बन्ध सूफ़ी रहस्य-वादियों के लिए स्वभावतः प्रेमदायी बना और इसलामी रहस्यवाद के पथ को प्रशस्त कर सका।

इसलामी रहस्यवाद के इतिहास में, आरम्भ के दिनों ही, ये सूफ़ी लोग, तथा अन्य अनेक धर्मवेत्ता, यूनानी चिन्तन के प्रभाव में आये। नव्यप्लेटोवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण धारणाएँ दो थीं : सर्वेश्वरवाद और, आध्यात्मिक संश्लेषण-शक्ति के रूप में—प्रेम। सर्वेश्वरवाद का ही सिद्धान्त 'वहदत-उल-वजूद' (निखिल अस्ति-वत्ता की एकात्मता) और 'शब्द' (निखिल विश्व उसी एक की अभिव्यक्ति) में भी निहित था। इस प्रकार सर्वव्यापी होने से ईश्वर मनुष्य में भी था ही। उसी ईश्वर को सर्वत्र देख पाना, प्रत्यक्ष ही, सूफ़ीवाद की एक उपलब्धि थी। रूमी और अत्तार जैसे महाकवियों ने अपनी रचनाओं में इन विचार-भावों को व्यक्त भी किया है।

सूफ़ीवाद के इतिहास में हुए सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों में एक बायजीद बुस्तमी थे। इन्होंने 'तसव्वुफ़' (प्रेम भक्ति) में भावोन्माद का तत्त्व संयुक्त करके

समूचे सिद्धान्त को ही एक नया मोड़ दे दिया। नव्यप्लेटोइक मत भी कि 'प्रेम स्वयं एक आध्यात्मिक शक्तिपुंज है' ईरान के सूफ़ी कवियों द्वारा व्यापक रूप से मान्य हुआ। फलतः अनेक अच्छी-अच्छी काव्यकृतियों की रचना हुई। बायज़ीद ने इस प्रेमाराधन में भावनामयता और भावोत्तेजन का पुट दिया। प्रिय के प्रति प्रेम-भाव अब प्रिय में एकीभूत हो जाने की आकुलता बन चला। रबि'आ की मानवीय प्रेमात्मक प्रतीक भाषा को भी ऊष्मायुक्त भाव-परिवेश में प्रस्तुत किया जाने लगा। फिर तो भाव-समाधि सहज साध्य हो ही चलती। प्रेमी और प्रिय अब दो न रहकर एकवत् हुए रहते। प्रेम भी अब निरा प्रेम नहीं था, भक्ति-आराधना का रूप ले चुका था, और भाव-समाधि ध्यान-समाधि का। भाव-विभोरता की इस अवस्था को सुलभ रखने के लिए सूफ़ियों ने अपने भक्ति-आराधना में सामूहिक गायन-नर्तन का समावेशन किया। प्रेमभाव का तो अब कोई ही पक्ष होता जो इन लोगों की प्रस्तुतियों से बाहर रहता। प्रेमियों का मिलन और बिछोह, विह्वल उसाँसें और आँसू, विभोरता और व्याकुलता, अटूट लालसा, उत्कट कामना और उसकी आपूर्ति, और प्रिय के अंग-अंग की आसक्तिमय कल्पना आदि सभी को संमूर्त किया जाता। अवश्य सर्वथा निष्कलुष रूप में, नितान्त आध्यात्मिक भावना लिये हुए। इस प्रकार, 'इश्क़' का आध्यात्मिकता की चूड़ा तक उदात्तीकरण होता है और बन चलता है अब तादात्म्य की साधना का एकमात्र माध्यम।

रूढ़िवादी मुसलमानों ने इन दोनों दृष्टिभावों का विरोध किया। क्योंकि इन दृष्टिभावों का ही तो प्रभाव था कि बायज़ीद जैसे व्यक्ति सर्वेश्वरवादी बन गये और 'हर शै में खुदा' को देखने लगे। यहाँ तक कहा बायज़ीद ने तो : 'इस कँबली में फ़क़त खुदा है ! कितना धन्य मैं ! कितना अज़ीम शहंशाह मैं !' बायज़ीद को नगर-निकाला दिया गया। मगर उसकी विचार-चिन्तना को और भी विकसन मिला हुसैन इब्न मंसूर-अल हल्लाज के द्वारा। हल्लाज (ख्यात नाम मंसूर) का तीन शब्दों का सूत्र 'अन अल हक़' (अहं ब्रह्मास्मि) ईरान और भारत में रहस्यवाद के प्रचार-प्रसार में बहुत सहायक हुआ। हल्लाज ने ईश्वर की अनुभवातीतता की सम्पुष्टि की है। उसकी मान्यता थी कि ईश्वरीय प्रेम की अभिव्यक्ति ने ही उसकी महिमा की अपारता निर्धारित की। यही उससे 'इनसाने कमाल' (पूर्ण मानव) सिद्धान्त का भी मूल आधार है। डॉ. मुहम्मद इक़बाल ने इसी सिद्धान्त को अब बीसवीं शताब्दी में पुनर्जाग्रत किया; मगर मंसूर को तो इसी के कारण ख़लीफ़ा अल मुक़तदीर के शासन-काल में सूली दी गयी !

रूढ़िवादियों ने सामूहिक अथवा वैयक्तिक गायन-नर्तन और आध्यात्मिकता के साथ भावनात्मकता और भावोत्तेजन के सम्मिश्रण का भी विरोध किया।

स्वाभाविक था कि सूफ़ीवाद के इस अनेकशाखी विस्तृत रूप का स्थान ग्रहण करने के लिए जीवन और चिन्तन का कोई एक स्थिर रूप उभरकर आता। यों

सूफ़ीवाद था 'शरीअत' में ही समाया हुआ; किन्तु, साथ के साथ, सूफ़ी लोग सचाई के साथ यह भी मानते कि 'शरीअत' (कर्मकाण्ड) ले चलती 'तरीक़त' [रहस्यवाद] की दिशा में और तरीक़त फिर 'मारिफ़त' (अध्यात्मवाद) की। अतः 'शरीअत' का पालन किये बिना तो उस परम सत्यता के साथ एक हो पाना सम्भव न था, और इश्वर अन्तिम ध्येय का ज्ञान हुए बिना 'शरीअत' का पालन निरर्थक रहता। सबका परिणाम यह है कि नमाज़, रोज़े और हज्ज के हिमायती रहते हुए, सूफ़ियों ने अपने जीवन और आचरण की पद्धति में अब 'तौब:' (पश्चात्ताप) को एक विशेष स्थान दिया। अर्थात् अब इन्होंने पापाचार की भावना तक का परित्याग किया, और अपने को भगवान् की सेवा में समर्पित कर दिया। सांसारिक विषयों से इन्होंने अब मुक्ति ली और एकान्तवासी जीवन ग्रहण किया। ईश्वर का भय इन्हें हर समय सावधान रखता। जीवन और व्यवहार में शुद्धता आ गयी और अपने-अपने लक्ष्य के प्रति हर व्यक्ति में दृढ़ निश्चयता। ईश्वर में आस्था अटूट होने से मन में सन्तोष का भाव आ गया, और यह विश्वास बँधा कि रहने-जीने की आवश्यकताओं का उपाय तो ईश्वर अपने ही करेगा! सूफ़ी लोग अब रहते भी प्रायः मौन। इससे चित्त की एकाग्रता सधती और ध्यान-चिन्तन सुगम बन पाता। उसे प्रत्यक्ष लगता कि वह तो अपने प्रभु का चाकर मात्र है। ईश्वर में उसकी निष्ठा अनन्य थी और उसकी दयालुता के लिए हर क्षण वह कृतज्ञ बना रहता। वह मानता कि नैतिक जीवन ('खुलूक़') ही आध्यात्मिकता का आधार होता है। उसकी मानो प्रतीति ही थी कि मुक्ति सचमुच साध्य है : अगाध ईश्वर-प्रेम और उसे प्राप्त करने की उत्कट लालसा द्वारा, ध्यान-चिन्तन और आत्मिक बोध अर्थात् आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा। यही था जीवन का आदर्श रूप जो सूफ़ियों की साध बना।

सातवीं शताब्दी में ईरान भी मुसलिम जगत् का अंग हो गया। अरब-इसलामी संस्कृति और आर्य-ईरानी संस्कृति, दोनों संस्कृतियों के ईरान में हुए परस्पर सम्मिलन का फल हुआ सूफ़ीवाद का चकितकर विस्तार और व्यापक स्वीकरण। यहाँ अब ऐसी धरती थी कि सूफ़ीवाद हुमक-हुमककर फला-फूला। ऊँचे आचार-शील और अध्यात्मविद्या-विषयक सूक्ष्मताओं के प्रति तो सूफ़ीवाद का प्रचुर योगदान हुआ ही, और भी अधिक हुआ साहित्यिक क्षेत्र में। बस ऐसा लगता मानो फ़ारसी साहित्य की उद्‌भावन शक्ति पर सूफ़ी धारणाओं का सहज अधिकार हो और इनकी अपनी सौन्दर्यपरक एवं कल्पनाशील प्रतिभा ने अब एक नये ही फ़ारसी काव्य का सृजन किया हो, जिसकी एक अपनी ही उदात्तता थी और अपनी ही वाग्मिता। विषयवस्तु और प्रेरण की दृष्टि से 'क्लासिकी' ईरानी काव्य एक बड़ी सीमा तक सूफ़ीयाना बन उठा।

नवीं और दसवीं शताब्दियों में सूफ़ीवाद पर अरबी और फ़ारसी में अनेक ग्रंथों की रचना हुई। फ़ारसी साहित्य के द्वारा अफ़ग़ानिस्तान और ईराक में तो सूफ़ी-

वाद को लोकप्रियता भी मिली। परिणाम इस सब का यह कि ग्यारहवीं शताब्दी में सूफ़ियों के कई समूह बन उठे। इनकी पहचान सूफ़ीवाद के विभिन्न सिद्धान्तों पर दिये जाते बल पर निर्भर करती। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान में तो रहस्यवादी प्रवृत्ति को व्यवस्थित और सुगठित बनाने में इन दलों का बड़ा हाथ रहा। इनका ही यह भी दायित्व हुआ कि रहस्यवादी विचार-धारणाओं को परिभाषित करें और यह भी निर्धारित करें कि 'ख़ानक़ाहों' और 'जमाअतख़ानों' (मठ और आश्रम) में रहनेवालों की जीवनचर्या आदि क्या हो और किन नियमों पर आधृत हो। सूफ़ियों के, इस प्रकार कई 'सिलसिले' (वर्ग-परम्परा) स्थापित हो गये। सबसे प्रमुख इनमें हुए : चिश्ती, सुहरावर्दी, नक़्शबन्दी, और क़ादिरी।

'चिश्ती सिलसिले' का नाम 'चिश्त' पर पड़ा। यह अफ़ग़ानिस्तान में हरात के पास बसे उस गाँव का नाम है जहाँ ग्यारहवीं शताब्दी में इस सिलसिले के प्रवर्तक ख्वाजा अबू-इसहाक़ रहते थे। पहले के इतिहास का तो पता चलता नहीं, पर भारत में इसे ख्वाजा मु'इन-उद्दीन हसन सिज्ज़ी ने प्रचलित किया। ये पृथ्वीराज के काल में आये थे और अपना आश्रम इन्होंने अजमेर में बनाया। दो अन्य स्थानों पर भी इस सिलसिले के केन्द्र बने। एक बख्तियार काकी द्वारा दिल्ली में, दूसरा हमीदुद्दीन द्वारा नागौर में। फ़रीद-उद्-दीन बख़्तियार काकी के ही शिष्य थे। ये अपने केन्द्र अजोधन में ही कठोर तप में लीन रहते। इस सिलसिले में सबसे अग्रगण्य हुए सूफ़ी निज़ाम-उद्-दीन औलिया। इतने धर्मिष्ठ थे यह कि तत्कालीन समूचे मुसलिम समाज पर इनका भारी प्रभाव था। सम्मान भी इन्हें बहुत-बहुत दिया जाता। इनका आश्रम दिल्ली में है और आन्तरिक शान्ति के लाखों खोजी आज भी इनके मक़बरे (समाधि) पर इकट्ठा होते हैं।

'सुहरावर्दी सिलसिले' के प्रवर्तक थे शेख़ अबू नजीब अब्दुल क़ादिर सुहरावर्दी। पर इस सिलसिले की संवर्धना हुई इनके भतीजे शिहाब-उद्-दीन सुहरावर्दी के द्वारा बग़दाद में। ईरान और ईराक़ के आपसी उपद्रवों के कारण इनके अनेक अनुयायी भारत चले आये। इनमें ही थे बहा-उद्-दीन ज़कारिया। तेरहवीं शताब्दी में इन्होंने ही भारत में इस सिलसिले का सूत्रपात किया और मुलतान को अपना केन्द्र बनाया। इल्-तुत्-तमिश के साथ इनके बहुत अच्छे सम्बन्ध थे और इनका आश्रम धन-सम्पत्ति और उदार भावनाओं के लिए ख्यात हो उठा।

'नक़्शबन्दी सिलसिले' का आरम्भ एक पहले के सिलसिले 'सिलसिल-ए-ख़्वग्गान' से हुआ। इसके प्रवर्तक थे ख्वाजा अहमद। यह मध्य एशिया के एक ख्यात धार्मिक नेता थे और इनके बारे में सामान्य रूप से माना जाता है कि तुर्कों को मुसलमान इन्होंने ही बनाया। इनके ही प्रयत्नों से इसलाम धर्म तुर्कीस्तान से आगे भी फैला और लोकप्रियता पाने लगा। नक़्शबन्दी सूफ़ियों को बराबर का संरक्षण उपलब्ध हुआ और फिर, अकबर के काल में, मुहम्मद बक़ीबिल्लाह

(1563-1603) के द्वारा भारत में भी इस सिलसिले का प्रवर्तन हुआ।

'क़ादिरी सिलसिले' की स्थापना बारहवीं शताब्दी में शेख अब्दुल क़ादिर जिलानी ने ईराक़ में की। यह एक प्रमुख रहस्यवादी, सन्त और उपदेष्टा थे। भारत में इस सिलसिले का प्रवर्तन मुहम्मद ग़ौस के द्वारा हुआ। इन्होंने अपना आश्रम ऊश में स्थापित किया। यहाँ इस सिलसिले को प्रमुखता सत्रहवीं शताब्दी में प्राप्त हुई। तब इसके नेता मुहम्मद मीर थे, जो शुकोह और जहाँआरा के गुरु थे। यही सिलसिला है जो भारत में आजकल सबसे अधिक प्रचलित है।

सूफ़ीवाद की भारत में पैठ प्रायः उन सभी ऐतिहासिक परिस्थितियों से जुड़ी हुई है जो इसलाम के प्रवेश के लिए उत्तरदायी हैं। भारत का इतिहास ही तब जिस कारण बदला, वह था ईसवी 998 में महमूद गज़नवी का गद्दी पर आते ही एक के बाद एक आक्रमण। उसने जैसे यहाँ के बाढ़-द्वार ही खोल दिये। कोई भी देख सकता था कि इस देश के विभिन्न राज्यों में कितनी फूट है और कितना असुरक्षित है पूरा का पूरा देश। ग़ज़नवी ने दिल्ली की भावी सल्तनत खड़ी करने का रास्ता संजोकर, भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना में हाथ बँटाया। किन्तु निकला, सच में, मुहम्मद ग़ूरी जिसने ईसवी 1186 में सर्वप्रथम लाहौर और मुलतान पर अधिकार पाया। ग़ूरी ने, इस प्रकार, उत्तरी भारत में मुसलिम आधिपत्य की नींव ही नहीं डाली, पंजाब से ग़ज़नवी शासन की समाप्ति भी कर दी। ग़ज़नवी लोग थे भले ही तुर्क, पर उनकी सांस्कृतिक भाषा फ़ारसी थी। इनके अधिकार-काल में लाहौर तो जैसे उप-राजधानी ही बन गया था। इसी से नाम भी 'छोटा गज़नवा' पड़ा। मुसलिम विशिष्ट वर्ग की भाषा भी फ़ारसी यहीं पर हुई। अलाउद्-दीन जहाँसोज़ (जहान-भर को आग लगानेवाला) ने जब आग और लूटमार से ग़ज़नी को तबाह कर दिया, तब लाहौर ही ग़ज़नवी राज्य का प्रमुख बौद्धिक केन्द्र बना। बाद को इसका महत्त्व और भी बढ़ गया, जब खुसरो मलिक के काल में राजधानी ही यहाँ हो गयी। स्वभावतः अफ़ग़ानिस्तान का कवि और मनीषी वर्ग इधर को आकर्षित हुआ और राजदरबार के साथ आ जुड़ा। बाद को सन् 1193 में जब राजधानी दिल्ली को स्थानान्तरित हुई, तब पूरे उपमहाद्वीप की दिल्ली ही फ़ारसी काव्य की केन्द्रस्थली बन गयी। अब ऐतिहासिक महानगरी की यह प्रतिष्ठा मुग़ल साम्राज्य के अन्त-काल तक सुरक्षित रही।

इतिहास के उन प्रबल मोड़ों और मरोड़ों में जिनसे भारत में विदेशी शरणार्थी आये, ग्यारहवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों मध्य एशिया में हुआ मंगोलों का उदय भी था। ईसवी सन् 1214 में मंगोल राज्यसंघ के नेता चंगेज़ ख़ाँ ने पीकिंग पर अधिकार किया और फिर बिजली की गति से पश्चिम में तुर्किस्तान, ईरान, आरमीनिया जीता हुआ उत्तरी भारत में लाहौर तक आ पहुँचा। असम और मध्य एशिया की मुसलिम हुकूमतें तक इन मंगोलों ने ध्वस्त कर दीं और 'ख़िलक़त' की

जान-माल को मिट्टी में मिला दिया। यही कारण हुआ जिससे घर-द्वार छोड़-छोड़कर शरणार्थियों की भीड़ें भारत की ओर उमड़ीं कि ठाँव पा सकें और आततायी के कोप से बचाव भी। दिल्ली मानो 'सहज चुम्बकी ध्रुव' था जहाँ को देश-देश के मनीषी-विद्वान् खिंचे जा रहे थे। कई बड़े धर्मवेत्ता जो आये उनमें प्रमुख थे : शेख अब्दुल हसन अल्-हुज्वारी, ख्वाजा मुइन-उद्-दीन चिश्ती, शेख़ जलाल-उद्-दीन तबरीज़ी, सैयद जलाल-उद्-दीन बुखारी और कुतेबुद्-दीन-बख़्तियार काकी। इनमें से अधिकांश ने अपने-अपने विचार-दर्शन की एक शाखा ही खड़ी कर ली थी और अपने यहाँ से उसी का प्राध्यापन-उपदेशन करते-कराते।

यहाँ यह भी उल्लेख कर दिया जाये कि भारत में इन विदेशी भीड़ों की आमद चंगेज़ ख़ाँ के ईरान पर आक्रमण से पहले भी हो रही थी। ख़ुरिस्तान में वहाँ के क़बीलों की आपसी लड़ाइयों का अन्त ही नहीं था। उदाहरण के लिए, ईसवी सन् 1153 में गुज़्ज़ क़बीलों ने सुलतान साँगर से विद्रोह किया और ख़ुरिस्तान ही नहीं, कई अन्य सूबों को भी उजाड़ दिया। ग़ज़नी पर इनका आधिपत्य हुआ तो शाह को भागकर शरण भारत में लेनी पड़ी। ग़ज़नी और काबुल के ताँता बँधे युद्धों और मध्य एशिया के आये-दिन के धावों ने असंख्य लोगों को विवश कर दिया कि भारत की सुविस्तृत अन्न-भरी भूमि पर पहुँचें और अपना भाग्य परखें। तब तुर्क लोग अपना साम्राज्य जमाने की यहाँ पहले से ही कोशिश कर रहे थे। काबुल से आये शरणार्थियों में एक बड़े विद्वान् भी थे : क़ाज़ी शु'ऐब। यह केवल विद्वान् ही न थे, बड़े धर्मिष्ठ भी थे। तीनों बेटों सहित, 1157 ईसवी में शु'ऐब कभी लाहौर पहुँचे। इन्हीं शु'ऐब के पोते थे फ़रीद मस'ऊद जो उनके भारत पहुँचने के सोलह वर्ष बाद 1173 ईसवी में जन्मे।

2

जीवनी और शिक्षणा

क़ाज़ी शु'ऐब के घर-परिवार आदि के बारे में जानकारी बहुत नहीं है। पर 'सिआर-उल-औलिया' के अनुसार, शु'ऐब काबुल के एक राज-परिवार के थे जो शाह फ़ारूक़ के काल में अपने चरम पर था। शाह फ़ारूक़ अपना राज-ताज सभी खो बैठे, जब ग़ज़नवी सत्ता में आये और शु'ऐब का परिवार का परिवार अपनी सारी मान-प्रतिष्ठा से वंचित कर दिया गया। इतिहास में, अवश्य, काबुल के शाह के रूप में फ़ारूक़ शाह का नाम कहीं नहीं आता। सम्भव है यह फ़रीद के अनुयायियों द्वारा प्रचारित निरा आख्यान ही हो। एक अन्य लेखक ने शु'ऐब की वंश-परम्परा को खलीफ़ा अमीर-उल-मूमिन उमर फ़ारूक़ से जोड़ा है। जो भी हो, इतना निश्चित है कि शु'ऐब थे किसी ऊँचे घराने के। इतना ही नहीं, वे क़ुरान-विषयक साहित्य से गम्भीर रूप में परिचित थे और अफ़ग़ानिस्तान छोड़ने से पूर्व किसी ऊँचे पद पर थे।

शु'ऐब एकान्तवासी प्रकृति के थे। अधिक ध्यान उनका धर्मदर्शन के मौन, अध्ययन की ओर रहता। अपने से उन्हें न तो दरबारी जीवन के आडम्बर भाते, न लाहौर की रंग-रैलियाँ ही। आने के कुछ ही दिनों बाद वे लाहौर छोड़कर कसूर चले गये। वहाँ के क़ाज़ी साहब इनके घर-परिवार की पृष्ठभूमि से भली भाँति परिचित थे। उन्होंने ही सुलतान को भी अवगत कराया कि कैसे एक ऊँचे घराने का विशिष्ट विद्वान् वहाँ आया हुआ है। सुलतान ने उन्हें एक ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित करना चाहा। पर शु'ऐब ने यह कहकर नम्रतापूर्वक प्रस्ताव को टाल दिया कि दरबारी जीवन और ऊँचे-ऊँचे पदों में उन्हें अब आकर्षण नहीं रहा। सुलतान ने फिर भी उन्हें मुलतान ज़िले में खोतवाल का क़ाज़ी नियुक्त किया ही। यहीं शु'ऐब ने जीवन का शेष भाग बिताया।

शु'ऐब के तीन बेटों में एक जमाल-उद्-दीन थे। इनका विवाह खोतवाल में ही क़रसुम बीवी के साथ हुआ, जो शेख़ वाजिब-उद्-दीन खोगेन्दी की बेटी थीं। इनके तीन बेटे हुए : इज्ज़ुद-दीन, फ़रीद मस'ऊद और नजीब-उद्-दीन। फ़रीद मस'ऊद का जन्म सन् 1173 में हुआ। चिश्ती सिलसिले के तीसरे 'प्रमुख' और

स्वयं एक सन्त होने के कारण इनका नाम हुआ : शेख़ फ़रीद-उद्-दीन, गंज-ए-शकर। यह आदरसूचक नाम 'फ़रीद-उद्-दीन', उनकी विशिष्ट आध्यात्मिक उपलब्धियों की सम्भावना में, प्रख्यात सूफ़ी सन्त फ़रीद-उद्-दीन अत्तार के बाद में इन्हें प्रदान किया गया। 'गंज-ए-शकर' अर्थात् 'मिठास का भण्डार' उन अनेक चमत्कारों के कारण उन्हें कहा जाने लगा जो उनके जीवन में घटे, अथवा, कई तो जैसे, उनके ही द्वारा सम्पन्न हुए माने गये।

पहला चमत्कार फ़रीद के बचपन का है जो एक अच्छी-ख़ासी कहानी बन उठा। फ़रीद की माता बड़ी धर्म परायण और निष्ठावान् थीं। वे चाहती थीं कि बालक फ़रीद नियमित नमाज़ अदा किया करे। उन्होंने कह रखा था कि अल्लाह उन बच्चों के वास्ते शक्कर भेजा करते हैं जो नमाज़-अदाई में चूक नहीं होने देते; और फ़रीद का यक़ीन बँधे, इसके लिए वे खुद तकिये के नीचे रात को शकर की पुड़िया रख दिया करती थीं। कुछ दिनों बाद उन्होंने रखना छोड़ दिया। मगर अचरज तो तब हुआ जब फ़रीद से ही एक दिन उन्होंने सुना कि पुड़िया तो तकिये के नीचे रोज़ मिलती है। उन्होंने यह समझने के लिए पूछताछ की कि कहीं फ़रीद के साथ कोई खिलवाड़ न करता हो। जब उन्हें विश्वास हो गया कि कोई और उसमें शरीक नहीं है, तब उन्होंने स्वभावतः मान लिया कि वह किसी दैवी-शक्ति का ही चमत्कार रहा। हो सकता है 'गंज-ए-शकर' उपनाम उन्होंने ही बेटे को इस पर दिया हो।

दूसरी कहानी का सम्बन्ध फ़रीद के उग्र तप से है जो उन्होंने 'परम-सत्यता' के ज्ञान की प्राप्ति के लिए किया। दिनों से वे उपासे थे और बहुत दुर्बल हो गये थे। एक दिन ऐसे में भी अपने गुरुवर के पास गये। रास्ता कच्चा था। वे फिसल गये। तब देखा कि मुँह में कुछ मिट्टी चली गयी। कहा जाता है कि मिट्टी उसी क्षण शकर बन गयी। गुरुदेव के स्थान पर पहुँचे तो बोले वे : 'फ़रीद-उद्-दीन-मस'ऊद! मुँह में गयी वह ज़रा-सी मिट्टी शकर बन गयी! अचरज नहीं यदि वह सर्वशक्तिमान् तुम्हारे समूचे अस्तित्व को ही माधुर्य का भण्डार बना दें और सदा-सदा उसे मधुमय रखें।'

एक और कहानी है जो फ़रीद के एक अपने ही चमत्कार से जुड़ी है। एक दिन इन्हें कई व्यापारी मिले। ये लोग ऊँटों पर शकर लिये जा रहे थे। पूछा फ़रीद ने : क्या लिए जा रहे हो भाई? सौदागरों ने सोचा : शेख़ कहीं शकर माँग न बैठें! उनका इसलिए जवाब हुआ : जी, नमक है। कहा जाता है कि सारी की सारी शकर उसी दम नमक बन गयी। सौदागर लोग अपने ठिकाने पहुँचे और समझे कि क्या हो गया, उलटे पाँव फ़रीद के पास दौड़े आये और अपने किये पर पछताने लगे। फ़रीद को उन पर दया हो आयी और थोड़ा-सा उन्हें फटकारने के बाद नमक को फिर शकर का शकर बना दिया। घटना चारों तरफ़ फैली, और

अब फ़रीद को सभी गंज-ए-शकर नाम से पुकारने लगे।

और भी एक कहानी है। फ़रीद को उस दिन भयंकर भूख लगी थी जिसेशान्त करने के लिए उन्होंने मुंह में कुछ कंकड़ डाल लिये। तत्काल ही सब शकर बन गये।

ऐसे ही अन्य कई चमत्कार भी उनके बताये जाते हैं। बहुत सम्भव है मीठे बोल-व्यवहार और स्नेहिल स्वभाव के कारण नाम 'गंज-ए-शकर' पड़ गया हो। मगर जन-समाज में उनका नाम 'बाबा फ़रीद' ही प्रसिद्ध हुआ।

फ़रीद की प्रारम्भिक शिक्षा खोतवाल में ही हुई। यहीं उन्होंने फ़ारसी-अरबी सीखीं और यहीं क़ुरान शरीफ़ में बताये गये नियम क़ायदे। अठारह वर्ष के हुए फ़रीद तो मुलतान गये और मौलाना मिनहाज-उद्-दीन तिरमिधी की मसजिद वाले मदरसे में दाख़िल हुए। यहीं उन्होंने विधिवत् क़ुरानशरीफ़, इसलामी क़ायदे क़ानून और अन्य सम्बद्ध विषयों का अध्ययन किया। बताया जाता है कि किशोर अवस्था में ही उन्हें पूरी क़ुरान कण्ठस्थ हो गयी थी और नित्य उसका पाठ भी किया करते थे। परिश्रमी स्वभाव और धर्म-दर्शन के प्रति उनकी लगन को देखकर तो वहाँ के मौलाना लोग तक उनकी चर्चा कर उठते। इबादत-बन्दगी में भी इतना तन्मय हो जाते थे कि उपनाम ही पड़ गया था : 'क़ाज़ी साहब के वो सनकी साहबज़ादे!' शहर में तो कहा तक जाने लगा था कि 'यह तो कोई होनेवाले सूफ़ी ही हैं।' बताया जाता है कि यही प्रसिद्धि सुनकर एक दिन शेख़ जलाल-उद्-दीन तबरीज़ी ख़ुद मिलने आये। शेख़ तबरीज़ी शेख़ बहा-उद्-दीन ज़कारिया और ख़्वाजा क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी के घने मित्र थे। शेख़ जलाल ने फ़रीद को एक अनार भेंट करना चाहा। फ़रीद का अनाहार था, इसलिए खा न सके। बाद को एक बीज उस अनार का फ़र्श पर उन्हें पड़ा मिला। उठाकर मुँह में डाला तो 'एकदम से भीतर एक प्रकाश-सा' जगता लगा। दिनों बाद अपने भावी आध्यात्मिक गुरु ख़्वाज़ा क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी को यह घटना सुनायी तो वे बोले, 'उस एक बीज में ही सारा आशीर्वाद निहित था। तुम्हारे लिए ही था वह : तुम्हें पहुँच गया—बचे हुए अनार में कुछ और था भी नहीं।'

मुलतान की उसी मसजिद में पढ़ते थे तभी एक दिन फ़रीद की भेंट अपने भावी गुरु, ख़्वाज़ा क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी से हुई। देखते ही जैसे अन्तरात्मा में एक आंदोलन-सा हुआ। दो समान-आत्माएँ मिल रही थीं। तरुण फ़रीद को लगा कि यही तो गुरु और मार्गदर्शक हैं जिनसे आध्यात्मिक दिशा-बोध मिल सकेगा। और फ़रीद ने बख़्तियार काकी के पाँवों पर सिर टेक दिया और शिष्य रूप में ग्रहण किये जाने की याचना की। फ़रीद ने यह चाह भी प्रकट की कि साथ ही दिल्ली ले चलें और अपनी ख़ानक़ाह में रहने की अनुमति दे दें। आध्यात्मिक ज्ञानार्जन के लिए वे फ़रीद के भाव और उत्साह से प्रभावित हुए।

उन्होंने शिष्य रूप में स्वीकार कर लेने का आश्वासन दिया, पर अभी मुलतान रह कर ही पढ़ते रहने को कहा। इधर की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद दिल्ली आ जाने को कह दिया क्योंकि वही ठीक समय होगा जब उन्हें सूफ़ीवाद के उच्चतर अध्ययन में प्रवृत्त किया जा सकेगा। मुलतान से अपने अध्ययन की समाप्ति पर उच्चतर अध्ययन के लिए फ़रीद कन्धार गये और पाँच वर्ष वहाँ रहे। कहा जाता है, इसके बाद उन्होंने व्यापक रूप से ईरान, ईराक़ और खुरासान का भ्रमण किया और मक्का शरीफ़ भी गये। यहाँ यह बता देना संगत होगा कि यात्रा-भ्रमण रहस्यवादियों की जीवन चर्या का एक आवश्यक अंग माना जाता है। साधु-सन्त, फ़क़ीर और रहस्यवादी, सभी तो कितने-कितने भ्रमणकारी और पर्यटनशील रहे। ये लोग महत्त्वपूर्ण धार्मिक स्थानों पर जाते हैं, विशेषकर जब कोई पर्व हो या किसी उत्सव के दिन हों और जन-समुदाय वहाँ जुड़ता हो। ऐसे में इन्हें जनमानस को समझने का, विभिन्न मत और सम्प्रदाय वालों के सम्पर्क में आने का, और अन्य अनेक धर्मविदों तथा आध्यात्मिक पुरुषों से मिलने तथा विचार-विनिमय करने का सुअवसर प्राप्त होता है। एक और भी पक्ष रहता है इन यात्राओं का, जो अधिक महत्त्व का भी होता है। मुक्त भाव से विचरने-भटकने में एक निर्लिप्तता-सी आ जाती है। कोई साधु हो या रहस्यवादी, वह समूचे संसार का ही हो जाता है। किसी स्थान विशेष से फिर जुड़ा-बँधा नहीं होता। समूचा संसार ही जैसे उसका कार्यक्षेत्र बन उठता है। और फिर तो जहाँ भी उसे अपने लिए उपशम लगे वहीं वह ठहर सकता है। अनुकूल आत्माओं से वहाँ वह मिलता-भेंटता है, जो स्वयं भी उसकी नाईं उस अवाच्य और शब्दातीत की अभीप्सु रहती हैं। फ़रीद के विषय में तो माना भी जाता है कि वे दूर-दूर तक भटके हैं और अनेक विशिष्ट धर्मज्ञों और रहस्यवादियों से उनकी भेंट हो सकी। इतना कहना पर्याप्त होगा कि अपने उच्चतर अध्ययन और व्यापक यात्राओं से भारत लौटे फ़रीद तो, पैतृक पृष्ठभूमि को भी देखते हुए, वे एक अत्यन्त गुण-सम्पन्न व्यक्ति थे और सुलतान के यहाँ ऊँचे-से ऊँचे पद के योग्य। पर फ़रीद की विचारधारा की दिशा ही भिन्न थी। उन्हें न पद-मर्यादा की चाह थी न धन-वैभव की। उनका तो इष्ट था आध्यात्मिक ज्ञान और साधना। दिल्ली पहुँचते ही वे सीधे ख्वाजा क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी की ख़ानक़ाह गये और वहीं शिष्यवत् रहने लगे।

फ़रीद की सूफ़ियोचित आध्यात्मिक साधना का विषय लेने से पहले यह बता देना उचित होगा कि ऐसे कुल तीन विशेष प्रभाव आये उन पर जो सारे जीवन की दिशा को ही नियत और निर्दिष्ट कर गये। पहला था माता क़रसुम बीवी का का प्रभाव। जैसा ऊपर कहा गया, इन्होंने ही बालक फ़रीद के मन पर यह बात अंकित की कि नमाज़ बिना चूके नित्य और ठीक समय पर अदा करनी चाहिए। वे स्वयं बड़े धार्मिक स्वभाव की थीं और अपने समय का अधिकांश मनन-प्रार्थना

में बितातीं। अनेक कथाएँ हैं कि उनके सम्पर्क में आनेवालों पर कैसा और उन्नायक भला प्रभाव पड़ा करता। एक घटना स्पष्ट कर सकेगी। घर में रात को चोर घुसे। क़रसुम बीवी अपनी लौ लगाये ध्यान में बैठी थीं। चोर तो उन्हें और उनके चारों ओर प्रकाश के घेरे को देखते ही स्तब्ध रह गये। पछताते हुए सब उनके पाँवों पर गिरे और वचन दिया कि अब से जीवन में सच्चे और ईमानदार रहेंगे। इनमें से आगे चलकर एक तो सन्त हुआ। लोग शान्ति खोजते उसकी क़ब्र पर ज़ियारत करने जाते। क़रसुम बीबी ने फ़रीद के मन में धर्म-भावना, ईश्वर भक्ति और नमाज़ की नियमितता की बातें बड़ी गहराई तक बैठायी थीं। सन्तों जैसे आदर्श रहन-सहन और समर्पित जीवनकी महत्ता को भी बचपन से ही अंकित करती आयी थीं। फलत: यही सबअब फ़रीद का एकमात्र इष्ट और लक्ष्य बन चला था।

दूसरा प्रभाव पिता जमाल-उद्-दीन का था। जमाल-उद्-दीन क़ुरान के बड़े उत्साही और कुशाग्र-बुद्धि अध्येता थे। कुछ ही समय के बाद तो उन्हें खोतवाल का क़ाज़ी नियुक्त कर दिया गया था। इन्होंने फ़रीद में अध्ययन की लगन और इसलामी ज्ञान के प्रति श्रद्धा जगायी। फ़रीद का घर, इस प्रकार, धर्म-परायणता और ज्ञानार्जन की भावना से सदा सिक्त रहता। साधारण रहन-सहन सभी का, सभी के जीवन की पृष्ठभूमि में धार्मिकता और धर्मशास्त्रों का मनन-चिन्तन : फलस्वरूप सारा वातावरण जैसे श्री-युक्त बना रहता। आगत अतिथि अधिकतर सूफ़ी लोग होते या धर्मवेत्ता, अथवा इसलामी विधिशास्त्र के ज्ञाता। ऐसे में कौन आश्चर्य कि, अपनी आन्तरिक प्रवृत्ति स्वयं आध्यात्मिक एषणा के रहते, फ़रीद का निश्चय और भी दृढ़ हो उठे कि जीवन को ज्ञानार्जन के प्रति ही समर्पित करेगा।

तीसरा प्रभाव था गुरुवर ख़्वाजा क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी का। यात्राओं से लौटने पर इन्हीं की ख़ानक़ाह तो फ़रीद पहुँचे भी। बख़्तियार काकी अपने समय के एक प्रमुख सूफ़ी थे। दिल्ली में ख़ानक़ाह थी, रहनेवाले अफ़ग़ानिस्तान में ऑश के थे। यह स्थान भूतपूर्व मन्सूर-अल्-हल्लाज द्वारा व्यवस्थित किये हुए सूफ़ी वर्ग का केन्द्र था। बख़्तियार काकी बाद में अध्ययन के लिए बग़दाद गये, जो इसलामी शास्त्र-शिक्षण के लिए प्रख्यात था और कई तत्कालीन शीर्ष सूफ़ी सन्तों के नाम के साथ सम्बद्ध भी। यहीं उनकी भेंट शेख़ मुइन्-उद्-दीन चिश्ती से हुई। इस सूफ़ी सन्त से वे इतने प्रभावित हुए कि उनके शिष्य ही बन गये। कुछ दिनों बाद चिश्ती भारत चले आये; और पीछे ही पीछे बख़्तियार काकी भी। दिल्ली में सुलतान इल्-तुत्-तमिश ने बख़्तियार काकी के विधिशास्त्र के ज्ञान की प्रशंसाएँ सुनकर उन्हें शेख़-उल्-इसलाम का पद देना चाहा। बख़्तियार काकी ने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने चुना दिल्ली में अपनी 'ख़ानक़ाह' बनाना जिससे कि भारत में सूफ़ीवाद का प्रचार कर सकें। यही ख़ानक़ाह थी जहाँ फ़रीद आकर अपने मुरशिद (मार्गदर्शक) के पास रहे।

ये ख़ानक़ाह रहस्यवादी-सूफ़ी लोगों के रहने-ठहरने के लिए आश्रम जैसे होते थे; यहाँ के नियन्त्रण-नियम बड़े कठोर होते थे। ये तीन वर्ग के रहते। एक : बड़े ख़ानक़ाह जहाँ रहस्यवादियों और अतिथि-अभ्यागतों को अलग-अलग कमरे दिये जाते। दो : 'जमाअतख़ाने' जहाँ कई-कई शिष्यों को एक साथ रखा जाता; और तीन : छोटे-छोटे आवास जो 'ज़ाविया' कहलाते और जहाँ सूफ़ियों-रहस्यवादियो को पूर्ण एकान्त उपलब्ध होता। ख़ानक़ाह के इन सब संवासियों के भी तीन वर्ग होते : मनोनीत संवासी, सहपन्थी संवासी, और अनुचर वर्ग। अतिथियों को ठहरने की अनुमति थी, पर केवल तीन दिन के लिए। अधिक ठहरने के लिए उन्हें अनुचरों के साथ मिलकर काम करना होता। खानक़ाहों में ठहरनेवालों के लिए आचार-व्यवहार के नियम बहुत कड़े और पूर्वनिर्धारित रहा करते। भोर हुए से देर-रात तक की दिनचर्या का एक-एक अंग निर्दिष्ट रहता था। वहाँ के सुनिश्चित नियम थे कि संवासियों के वस्त्र आदि कैसे-क्या हों, अतिथियों का किस प्रकार स्वागत हो, क्या रूप हो शैख़ महोदय तथा अन्य वरिष्ठ जनों को सम्बोधन करने का, और क्या समय हों नमाज़ के, क्या रूप हो किस प्रायश्चित्त या आत्मदण्ड का। कैसी भी चूक के लिए दण्ड नियत था। तीन अन्य पक्ष भी थे वहाँ के सामाजिक जीवन के। एक था आध्यात्मिक भावमयता की साधना में संगीत-मग्न होना; दूसरा, दिवंगत सन्तों के निधन तिथि उत्सव (उर्स) मनाना; और अन्तिम, 'लंगर' की प्रथा अर्थात् सामुदायिक भोजन-व्यवस्था, जो सभी इच्छुक जनों के लिए उपलब्ध रहती।

ख़ानक़ाह की जीवनचर्या वास्तव में वहाँ के आयोजक शैख़ महोदय पर निर्भर करती। वही सारा निदेशन करते : आध्यात्मिक साधना का भी और सामाजिक जीवन एवं व्यवहार का भी। ख़ानक़ाह में सभी लोग आते—मुसलिम ही नहीं, हिन्दू तथा अन्यान्य भी—और शैख़ से मार्गदर्शन एवम् उनके अनुग्रह-भाव की याचना करते। अन्यान्य धर्मों के अनेक योगी और साधु-सन्त भी आया करते जो बैठकर धर्मशास्त्र विषयक समस्याओं पर विचार-विमर्श करते। सूफ़ी लोग तो यों भी इसलाम धर्म के 'मिशनरी' जैसे थे, और पैग़म्बर मुहम्मद का सन्देह सब कहीं सुनाया करते।

सूफ़ियों की आजीविका का साधन था अनुर्वर धरती की जुताई-बोआई अथवा अयाचित दान-भेंट। शिष्यों को भिक्षाचार की अनुमति थी। दान के रूप में वहाँ जो कुछ प्राप्त होता उसे संवासियों में बाँट देते थे। राजघराने अथवा बड़े-बड़े व्यापारियों से जो बड़ी-बड़ी भेंटें आतीं, उन्हें भी सँजोकर नहीं रखा जाता था, बल्कि हाथोंहाथ निर्धनों में बाँट दिया जाता था। स्थावर सम्पत्ति और नियमित आनेवाली धनराशियाँ स्वीकार नहीं की जाती थीं। राजकीय संरक्षण तो सुहरा-वर्दी सिलसिले को छोड़ और किसी ने ग्रहण ही नहीं किया। रहन-सहन का

सामान्य रूप तपसियों जैसा ही रहा करता था। स्वेच्छा से वरी हुई अकिंचनता और अनुताप अथवा प्रायश्चित्त में किये गये कर्म सब आत्मोन्नति के क्षेत्रगत आनुषंगिक कार्य माने जाते थे।

सूफ़ी लोग सामान्यतः थिगली लगे लबादे पहनते और सिर मुंडाये रखते। शैख़ का अपना लबादा, मुसल्ला (नमाज़ पढ़ने की आसनी), चप्पल, छड़ी और तसबीह (सुमिरनी) को पवित्र माना जाता था और उनके सन्तत्व की प्रतीक-वस्तु। शरीरान्त होने पर यह सामग्री उत्तराधिकारी (ख़लीफ़ा) को सौंप दी जाती थी। शैख़ का एक वसीअतनामा ('ख़िलाफ़तनामा') भी होता था। इसमें, जिसे वे उत्तराधिकारी नामित करते, उसका नाम दिया रहता और उसके लिए यह आदेश भी कि उनके मिशन का कार्य इसी प्रकार से चलता रहे, धर्म और ज्ञान का प्रचार हो और इस सिलसिले को बनाये रखा जाये। यह परामर्श भी प्रायः दिया रहता कि उत्तराधिकारी किसी भले अंचल में एक केन्द्र स्थापित कर लें और स्वयम् सेवा और आत्मत्याग का जीवन बिताते हुए, सूफ़ीवाद के सन्देश को जन-साधारण तक पहुँचावे।

यहीं बता दें यह भी कि उक्त सारा विवरण जैसे ख़ानक़ाह की काया का ढाँचा-भर हुआ। मांस और रक्त के नाम तो शैख़ का अपना व्यक्तित्व और जीवन की आदर्शमयता आते। उन्हें ही उसमें समर्पण की भावना फूंकनी होती और वातावरण को आध्यात्मिक एषणा से इतना व्याप्त करना होता कि संवासी जन ऐहिक जीवन की चाहनाएँ स्वयम् ही त्याग चलें और फिर जैसे स्वयम् ही उस सर्वशक्तिमान् ईश्वर के सान्निध्य में रहते हों। सूफ़ियों का चरम अभीष्ट होता है 'वस्ल,' अर्थात् आत्मा और परमात्मा का एकत्व। इसे एक क्षण को भी नहीं भूलना होता, और प्रत्येक सम्भव उपाय-साधन करना होता है जो प्राणों को इस परम सत्यता के साथ एकतान रख सके।

फ़रीद जब बख़्तियार काकी की ख़ानक़ाह में आये तो गुरुवर की सजग दृष्टि तले और उत्साहक निर्देशन में उन्हें, रहस्यवादियों के लिए अपेक्षित कड़ी से कड़ी साधनाएँ करनी पड़ीं। वस्तुतः प्रारम्भिक जीवन ही उन्हें इस दुःसाध्य पथ पर अग्रसर कर चुका था। इसी से अब इष्ट की साधना में गुरुवर काकी के संकेत मात्र पर निद्रा को वश करते घण्टों-घण्टों एकान्त में आसन से बैठे रहते। स्वयम् अपनी इच्छा से भी वे तप और अनाहार तथा अन्य काय-कष्ट आमन्त्रित करते रहते थे। आध्यात्मिक ज्ञानोदय के लिए देह-दमन की विभिन्न क्रियाएँ सूफ़ियों ने भारतीय योगियों से ग्रहण की थीं। इनमें से अनेक सूफ़ी साधना-जगत् में अभ्यासियों के लिए अनिवार्य मानी जाती थीं। इनमें कुछ क्रियाएँ प्राणायाम सम्बन्धी थीं, कुछ इन्द्रिय-निग्रह सम्बन्धी; कुछ सांसारिक विषयों से उपरामता लाने के लिए, और कुछ मन को एकाग्र करने की। योगी लोग 'ध्यान' से ही प्रारम्भ करते, अर्थात् सम्पूर्ण

ध्यान किसी एक विषय-बिन्दु पर संकेन्द्रित करते और क्रमशः समाधि-अवस्था तक जा पहुँचते। गम्भीर एकाग्रता यों आध्यात्मिक लोक के द्वार तक ले जाती है, जहाँ बाह्य विषयों का ज्ञान बना नहीं रहता : परन्तु ध्यानावस्था का सम्बन्ध एक उच्चतर भूमि से ही होता है। यहाँ भूत, वर्तमान और भविष्य का लोप हो जाता है, समय का अस्तित्व रहता नहीं, और अन्तमय एवं अनन्त एकीभूत हो जाते हैं। प्राणी और प्राणवत्ता का संलयन हो जाता है, और व्यक्ति फिर व्यक्ति मात्र न रहकर उस विश्वात्मा का ही अंश बन उठता है। फलतः सर्वत्र व्याप्त हो आती है एक निरन्तर शान्ति; मन एक अलौकिक दीप्ति से उज्ज्वल हुआ रहता है और समस्त भय, तनाव और कायिक कष्ट एवम् सीमा और प्रतिबन्ध तिरोहित हो जाते हैं। यही आध्यात्मिक अनुभूति है वह जिसकी सभी रहस्यवादियों को चाहना लगी रहती है। यही फ़रीद की आन्तरिक लगन थी जिसके लिए वे तप और ध्यान साधा किये। वे अब सब ओर से खिंचकर केवल अपने कक्ष में ही रहते और समय का अधिकांश एकान्त में गुरुवर के बताये आसन से बैठे अल्लाह का नाम जपते रहते। माना यह भी जाता है कि उन्होंने 'चिल्लाह-ए-माकूस' भी एक बार खींचा और चालीस रात एक कुएँ में उलटे लटके हुए अल्लाह के नाम पर ध्यान लगाये रहे। यह तो कहना कठिन है कि ऐसा सचमुच हुआ या फ़रीद के शिष्यों द्वारा प्रचलित की हुई एक कथा-मात्र है। कुछ कथाएँ इस 'नमाज़-ए-माकूस' को छह महीने तक चली बताती हैं, जबकि कुछ तो दस बरस तक ! पर यह कालावधि की बात अलग, फ़रीद के प्रेमी और प्रशंसक सभी मानते हैं कि ऊश में एक बार मस्जिद-ए-हज्ज के पास वाले कुएँ में उन्होंने 'चिल्लाह-ए-माकूस' खींचा था। यह बात ध्यान में रखते हुए कि फ़रीद अपने निश्चयों के प्रति कितने दृढ़ थे, और कितने आग्रही अपनी तपोसाधना के विषय में, हम मान लेते हैं कि उन्होंने 'चिल्लाह' खींचा होगा। 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित की गयीं उनकी कुछ काव्य-रचनाओं में भी इसके परोक्ष प्रमाण मिलते हैं। इस सन्दर्भ में श्लोक 90 और 91 विशेष महत्त्व के हैं :

फरीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग।
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग॥ 90॥

कागा करंग ढंढोलिआ सगला खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुहन पिर देखन दी आस॥ 91॥

फ़रीद कुएँ में उलटा लटका है। कौओं ने उसकी काया में घर बना लिये हैं, तो भी ईश्वर की लगी लौ बनी की बनी है! दूसरे श्लोक में वह कौओं से ही याचना करता है कि भले ही सारी देह पिंजर रह गयी है, पर उसकी आँखों को वे अछूता रहने दें, जिसमें प्रियतम को देख तो सकें! इतना भीषण था यह तप जो

अपने प्रभु की चाहना में फ़रीद ने इच्छापूर्वक सहन किया। यहाँ महत्त्व इस बात का नहीं कि अपने जीवन के किस काल में फ़रीद ने 'चिल्लाह्-ए-माकूस' खींचा, महत्त्व इस बात का होना चाहिए कि तपोसाधक होने के नाते, अपने इष्ट की प्राप्ति के लिए, उन्होंने कठिनतम परीक्षा का भी संकल्प किया।

यह अवश्य है कि कायिक तप से आत्म-नियन्त्रण और आध्यात्मिक अनुशासन में सहायता मिलती है, किन्तु अपने में वह एक नकारात्मक गुण ही रहता है। तप का फल यदि संसार से विरक्त होना मात्र है, तब सन्तुलन बनाये रखने के लिए ईश्वर के प्रति अनुरक्ति भी अपेक्षित होगी। फ़रीद में तो प्रकट ही, जहाँ उग्र तप है वहीं साथ में प्रभु की उत्कट चाहना भी विद्यमान रही। सदा ही तो उनके होंठों पर ये शब्द रहे : 'तेरे ही लिए तो मैं जीता या मरता हूँ!' योगियों से भिन्न, फ़रीद की आस्था का विषय यह नहीं था कि अपने लोक-समाज के सुख-दुःख की ओर से उदासीन होकर संसार को त्याग दें और कहीं वन में जा रहें। वे सचमुच ही 'प्रभु के लिए जिये और मरे', किन्तु लोक-समाज के साथ जुड़े भी सदा रहे। यह इच्छा उनकी निरन्तर रहती कि आध्यात्मिक मूल्यों के सम्बन्ध में सबकी सेवा और सबका उन्नयन करें। ये ही दो लक्ष्य, ईश्वर के साथ एक हो रहने की लगन और सामान्य जनवर्ग की भी सहायता, फ़रीद के जीवन के मुख्य उद्देश्य रहे।

बख़्तियार काकी की ख़ानक़ाह में रहते हुए, निरन्तर आराधना और तप के फलस्वरूप, फ़रीद के चतुर्दिक् भी सन्तों जैसा परिमण्डल बना रहता था। एक बार, चिश्ती सिलसिले के भारत में प्रवर्तक, अजमेरवाले ख़्वाजा मुइन्-उद्-दीन अपने शिष्य बख़्तियार काकी से मिलने इस ख़ानक़ाह आये। फ़रीद को देखा उन्होंने तो बोले, 'बाबा बख़्तियार, बड़ा कुलीन शिकरा पकड़ा है! बहिश्त के उस दरख़्त-ए-पाक को छोड़ कहीं और उतरनेवाला नहीं यह! तुम्हारा फ़रीद तो वह चिराग़ है जो दरवेशों के सिलसिले को रोशन रखे!' इतने आह्लादित थे मुइन्-उद्-दीन कि उन्होंने बख़्तियार काकी से शिष्य को आशीर्वाद देने के लिए कहा। बख़्तियार काकी ने आदरपूर्वक 'ना' की। उन्हें लगा कि अपने गुरु के सामने रहते उनका ऐसा करना अनुचित होगा। अन्त में दोनों ही सन्तों ने मिलकर फ़रीद को आशिस् दी। ख़ालिक अहमद निज़ामी ने इस असामान्य घटना पर बड़ी उपयुक्त टिप्पणी की है : 'चिश्ती सिलसिले के इतिहास में यह अद्वितीय सम्मान था। फ़रीद से पूर्व या उनके बाद भी कोई सन्त नहीं हुआ जिसे गुरु, और गुरु के गुरु, दोनों ने इस प्रकार आशिस् दी हो।' ख़्वाजा निज़ामुद्दीन के शिष्य अमीन ख़ुर्द के शब्दों में उसका अर्थ हुआ :

> 'दोनों महान आत्माओं ने तुम पर ही दोनों संसार—इहलौकिक एवं पारलौकिक के योग-क्षेत्र का भार सौंप दिया है। तुमने ही ज़माने भर के शहंशाहों से साम्राज्य प्राप्त किया है। इस लोक और परलोक का वैभवपूर्ण साम्राज्य,

सारा का सारा, निश्चय ही तुम्हारा है और समग्र सृष्टि तुमसे ही अनुबंधित है।

आश्चर्य की बात नहीं कि इतने प्रत्यक्ष साधु-व्यक्तित्व एवम् अपनी धर्म-परायणता, तपश्चर्या तथा प्रार्थनाशीलता के लिए ख्यात फ़रीद की चर्चा लोगों में तेज़ी से फैल उठी। क़ुत्ब-उद्-दीन की ख़ानक़ाह में भीड़ें लगने लगीं। कोई उनसे तावीज़ बनवाने के लिए आते तो कोई अपने लिए 'दुआ माँगने की इल्तिजा' लेकर। देहातों में तो आम विश्वास बँध गया था कि उनके बनाये तावीज़ों से न केवल अनिष्ट टल जाते, बल्कि बीमारियों से भी छुटकारा मिल जाता। धीरे-धीरे आने वालों की संख्या इतनी बढ़ चली कि फ़रीद की ध्यानोपासना में विघ्न पड़ने लगा। अन्त में उन्होंने गुरुवर क़ुत्ब-उद्-दीन से परामर्श माँगा। इनका सीधा सूफ़ियाना उत्तर हुआ, 'अपने हाथ में कुछ रहता है क्या ? हम तो महज़ उसके हाथ का औज़ार हैं। तुम जो तावीज़ लिखते हो उस पर भी नाम अल्लाह का रहता है : वही तो शफ़ा करनेवाला है। तुम लिखते हो : लिखते रहो !' और फ़रीद ज़रूरत-मन्दों को तावीज़ देते रहे। कठिनाई फिर सामने आयी जब फ़रीद के शिष्य निज़ाम-उद्-दीन को तावीज़ लिखने के ही काम से पार नहीं मिलता। फ़रीद ने समझाया, 'तावीज़ लिखने से ही इतने परेशान हो आये, तो उस वक़्त क्या करोगे जब दरवाज़े पर भीड़ होगी और हरेक चाहेगा कि उसके लिए दुआ माँगो !'

फ़रीद का साधना-काल पूरा हुआ तो गुरुवर क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी ने परामर्श दिया कि वे अब हाँसी चले जायें और वहीं अपना कार्य-केन्द्र बनायें। हाँसी बड़ा शान्त स्थान था। फ़रीद ने सोचा वहाँ दीन-दुखियों की सहायता भी करने को मिलेगी और, दिल्ली की भीड़ों से बचकर, अपनी ध्यानोपासना को भी अधिक समय दे सकेंगे। फ़रीद हाँसी के लिए रवाना हों, उससे पहले क़ुत्ब-उद्-दीन ने फ़ातिहा पढ़वायीं और घोषणा की कि उनके मरणोपरान्त फ़रीद-उद्-दीन, गंज-ए-शकर उनके उत्तराधिकारी होंगे। और गुरुवर ने अपना मुसल्ला और छड़ी दोनों 'उन्हें अता फ़रमायीं'। अन्य सब अधिकार-चिह्न गुरुवर के मरणोपरान्त पहुँचने थे।

हाँसी सच में उतना पिछड़ा हुआ था नहीं जितनी फ़रीद ने कल्पना की थी। वह तो हिसार ज़िले में एक पूरी छावनी था और एक ऐतिहासिक स्थान भी। तुर्कों और राजपूतों के युद्धों में यहाँ का उल्लेख आता है। फ़रीद यहाँ बरसों रहे। कुछ इतिहासकारों के मत से बारह बरस, और कुछ के तो बीस बरस। फ़रीद की सहृदयता, धार्मिकता और प्रेमशीलता ने स्वभावतः उन्हें सभी का श्रद्धास्पद बना दिया। कुछ सन्त-चरित्रकारों ने तो फ़रीद के इस जीवन-काल को ऐसे अनगिन चमत्कारों से पूर दिया है जो एकमात्र उनके ही किये हुए माने जाते हैं। मैक्स आर्थर मैकॉलिफ़ ने जो इस बीसवीं शताब्दी में उनका चरित्र प्रस्तुत किया है, उस तक में चमत्कारी घटनाओं के उल्लेख हैं। यों फ़रीद जैसे व्यक्तियों को अपनी आध्यात्मिक स्थिति की प्रतीति कराने के लिए चमत्कारों की आवश्यकता होती

नहीं। उनमें तो वे सब गुण ही विद्यमान थे जो किसी सूफ़ी को जनता का इष्ट बना देते थे और भगवान् का चहेता। शैख़ मुइन-उद्-दीन का इन गुणों की ही ओर संकेत था जब उन्होंने कहा कि ईश्वर को हर व्यक्ति प्यारा होता है 'जिसमें जल-धारा की उदारता हो, सूर्य की परोपकारिता, और धरती की स्वागतशीलता !'

यद्यपि फ़रीद आप चरम अभावों में दिन बिताते और अन्न के अभाव में आये दिन उपासे तक रहते, उनकी ख़ानक़ाह अतिथि के लिए सदा मुक्तद्वार रहती और 'फ़रीदी लंगर' में उस-भर के लिए कुछ-न-कुछ निकल ही आता। उनकी ख़ानक़ाह में मुसलिम ही नहीं, अन्य धर्मों के लोग भी आते रहते। कोई आशीर्वाद चाहता, कोई अपने आशंका-सन्देहों से पार पाना। कभी-कभी तो अपनी भीतरी गुत्थी मुलझाने के लिए कोई साधु-योगी ही आ निकलते। फ़रीद हिन्दू और मुसलिम में भेद नहीं करते थे। उन्हें तो कट्टरपन्थी उलेमाओं का अ-मुसलिमों को 'काफ़िर' मानना भी अप्रिय लगता। इसके अतिरिक्त सूफ़ी होने के नाते किसी का धर्म-परिवर्तन करना उनका कार्य था भी नहीं। यों यदि कोई इसलाम धर्म को ग्रहण ही करना चाहे तो उसे स्वागत देते। अपने से वे क़ुरान के इस आदेश को ही मान्यता देते कि 'धर्म में कोई बाध्यता नहीं हुआ करती'। सचाई, किन्तु, यह है कि उलेमाओं के ईश्वर की एकत्वता पर बल देने, सभी के साथ भाईचारे का व्यवहार रखने, स्वयम् अपने जीवन में धर्मपरायण और चरित्रवान् रहने, और सबसे अधिक तो, जाति और धर्म का ध्यान किये बिना सभी के प्रति जैसी हितैषिता, सहानुभूति और सेवा-भावना का परिचय इन्होंने दिया उससे प्रभावित होकर हज़ारों हिन्दुओं ने धर्म-परिवर्तन स्वीकार किया। इनमें सबसे अधिक निचली जातियों के लोग थे जो पीढ़ियों से घृणा और तिरस्कार भोगते आये थे। फ़रीद प्रारम्भ से ही विभिन्न धर्मों और संप्रदायवालों में परस्पर उदारता और सहिष्णुता के प्रतीक गिने जाते थे। अमरी हसन सिज्फ़ी ने 'फ़वा-ईद-उल्-फु'आद' में लिपिबद्ध किया है कि एक बार फ़रीद को किसी ने एक क़ैंची भेंट की। देखते ही बोले वे, 'मुझे सूई दो भाई ! मैं सिलाई करता हूँ, कटाई नहीं !' उनका तो सदा प्रयत्न यही रहता कि धर्म की श्रेष्ठता के नाम पर कलह और विद्वेष घर न करने पायें, बल्कि आपसदारी के सहारे सब लोग निकटतर आयें और समीपी होकर रहें। फ़रीद की 'शरीअत' (मज़हबी क़ानून) के प्रति गहरी आस्था ही 'तरीक़त' (उपाय मार्ग) की आधारभूमि बनी, और उन्होंने जिस मार्ग का आजीवन अनुसरण किया वह प्रेम का ही मार्ग था। यह प्रेम का मार्ग ही सूफ़ी संप्रदाय का विचारमूल बना। इस प्रेमभाव में ईश्वर-प्रेम और उसकी सृष्टि के प्रति प्रेम, दोनों ही समाये हुए रहते। फ़रीद का तो आग्रह यह रहा कि ईश्वर प्रेम की साधना का एकमात्र उपाय ही उसके सिरजे मानव को प्यार करना होता है। हाँसी में उन्होंने इसी प्रेमभाव के वातावरण को विकसित करके आपसी भेदभाव, अनबन, कलह तथा सांप्रदायिक विद्वेष से पार लेना

चाहा। यही निखिल मानवतावाद आर विश्ववाद सूफ़ी सन्तों की धार्मिक आस्थाओं का सार था। इसी के कारण वे आज तक हिन्दू-मुसलिम और सिक्खों का प्रेम भी अर्जित करते आये। उस अनिश्चित और अशान्त युग की राजनीतिक और सामाजिक अवस्था को देखते हुए यह एक क्रान्ति जैसी ही थी जो फ़रीद जन-मानस में ला सके।

इसी बीच समाचार आये कि क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी अब नहीं रहे। फ़रीद्र को दिल्ली जाना पड़ा। उन्हें चिश्ती सिलसिले का प्रमुख घोषित किया गया और समस्त अधिकार-चिह्न सौंप दिये गये। दिल्ली का जीवन हाँसी से बिल्कुल भिन्न था। यहाँ तो सारा समय पूर्वनिश्चित भेंटों, धर्म-सम्मेलनों और निरन्तर आते उन आवश्यक तथा विशिष्ट अभ्यागतों में लग जाता जो फ़रीद से ही मिलना चाहते। भीतर-भीतर चलते राजनीतिक कुचक्र अलग थे जो धर्मगुरुओं को भी लपेट उठते। सामन्तशाही की प्रकृति ही ऐसी होती है कि विभिन्न प्रकार के तनाव, अनबनें और अवसरचारिता बनी रहें। और क्योंकि इसलामी राज्य में विधि और न्याय भी धर्म का अंग होते हैं, राजनीति और धर्म एकमेक हुए बिना नहीं रहते। परिणाम यह है कि धर्म के अग्रणियों को विवश होकर राजनेताओं के पीछे-पीछे चलना होता है। इस कारण राज्य के प्रति सूफ़ी और कट्टरपन्थी दृष्टि-कोणों में क्या भेद है, इसे समझ लेना उचित होगा। यह ठीक है कि सूफ़ियों और राजकीय धर्म के प्रतिनिधि उलेमाओं में चलते विरोध के कुछ तात्त्विक कारण थे। सूफ़ी लोग निष्ठापूर्वक इस बात पर बल देते कि ईश्वर का सीधे ही दर्शन किया जा सकता है, और कि आध्यात्मिक साधना के द्वारा 'उसके साथ वस्ल' भी इसी जीवन में और इसी धरती पर सम्भव है। इससे भिन्न उलेमा लोगों का 'रोज़े-जज़ा' (कर्मफल निर्णय का दिन) और पुरस्कार में 'दोज़ख़' या 'बहिश्त' में नितान्त स्थिर विश्वास था। इसलिए ये लोग पूरे ज़ोर-शोर के साथ इसी जन्म में ईश्वर-दर्शन की मान्यता को अमान्य ठहराते थे। इनका कहना था कि मनुष्य का ईश्वर के साथ इतने निकट का नाता हो ही नहीं सकता। यह तो केवलमात्र पैग़म्बर का ही विशेषाधिकार रहता है। इसलिए ईश्वर-दर्शन, ईश्वर-मिलन या विलयन का प्रश्न ही नहीं उठता। मनुष्य तो अधिक से अधिक उसकी दया-कृपा और स्वर्ग के आनन्दमय जीवन की ही आशा कर सकता है। इससे भिन्न रहस्य-वादियों का तो आग्रहपूर्वक कहना होता कि उनके यहाँ तो ऐसे लोग भी हुए हैं जो 'उसके दर्शन के बिना' क्षण को भी न रह सकें। इसके अतिरिक्त सूफ़ी लोग तो इस जीवन-जगत् के वैभव से भी उदासीन रहते और परलोक के स्वर्ग-नरक से भी।

यहाँ उल्लेख कर दें कि चिश्ती सिलसिले ने बराबर आग्रह रखा कि शासन के साथ रंच-भर भी सम्बन्ध न हो। पर जहाँ शासन ही सर्वसत्ताधारी हो वहाँ सम्पर्क को सर्वथा बचाये रखना कठिन ही होगा। इस विषय में फ़रीद का अपना दृष्टि-

भाव दो घटनाओं से स्पष्ट हो सकता है। सुलतान बलबन ने जब फ़रीद को भेंट में चार गाँवों की सनद और काफ़ी नक़दी भेजी, तब इन्होंने नक़दी तो स्वीकार करके ग़रीबों में बँटवा दी और सनद को यह कहलाते हुए लौटा दिया कि इसे स्वीकार करके तो वे 'सूफ़ी' न रहकर 'जागीरदार' बन जायेंगे और फिर 'दरवेशों' में कहीं स्थान ही न रह जायेगा। दूसरी घटना तब की है जब उन्हें बलबन से ही एक व्यक्ति की सिफ़ारिश करनी पड़ी। उन्होंने लिखा, 'इस शख़्स का मामला पहले ख़ुदा के सामने हाज़िर कर रहा हूँ, उसके बाद आपके। आपकी अगर इस पर मेहरबानी होती है, तो उसके लिए आपके शुक्रगुज़ार होंगे। क्योंकि देनेवाला सही मायनों में सिर्फ़ ख़ुदा होता है और मेहरबानी इसे आपके ज़रिये मिलती होगी। आपका अगर इनकार होता हैं, तब उसे महज़ आपकी मजबूरी माना जायेगा, क्योंकि 'ना' करनेवाला सिर्फ़ ख़ुदा हो सकता है।' इस विषय में अपने शिष्यों को फ़रीद का परामर्श बिल्कुल स्पष्ट हुआ करता था : 'आध्यात्मिक श्रेणी में ऊँचा उठना चाहते हो तो राजों-राजकुमारों से बचकर रहो!' दिल्ली के जीवन और वहाँ की राजनीतियों से खिन्न होकर फ़रीद हाँसी लौट आये। पर चाहती शान्ति यहाँ भी अब मिली नहीं। जिधर भी जाते फ़रीद, भीड़ें इकट्ठा हो आतीं और समय और अवकाश का अधिकांश इनकी भेंट हो जाता। अन्तर्प्रेरणा से विवश होकर उन्होंने हाँसी छोड़ दी और ऐसे स्थान की खोज करने लगे जो शान्त, एकान्त और उजाड़-जैसा हो। क्योंकि ऐसे ही किसी स्थान पर बैठकर ध्यान-चिन्तन और 'वस्ल' हासिल किये जा सकते। और यह 'वस्ल' ही तो सूफ़ीवादी साधना की चरम उपलब्धि थी। हाँसी की ख़ानक़ाह अपने एक शिष्य को सौंपकर फ़रीद अजोधन चले गये। यह स्थान बाद में 'पाक-पुत्तन' कहलाया, और जो (अब) पाकिस्तान में मॉण्टगोमरी ज़िले में है।

फ़रीद ने यहाँ बस्ती से दूर एक वीरान-सी जगह चुनकर पेड़ों के बीच एक छोटी-सी कुटिया डाली। चारों तरफ़ मीलों तक बालू के ढूह थे और यहाँ-वहाँ रुँधा-घुटा पेड़। सारे में साँपों की बाँबियाँ थीं और जंगली जानवरों की खोड़र। बाबा फ़रीद को साँप एक बार डँस चुका था और माँ क़ुरसुम बीवी को तो जंगली जानवर आहार ही बना चुके थे। यहाँ कुछ काल फ़रीद सारा-सारा समय ध्यान-चिन्तन में ही लगाते रहे, मगर बाद में अभ्यागतों को कुछ छूट मिलने लगी। ऐसा प्रायः होता है कि जहाँ भी किसी बड़े सन्त ने अपना वास नियत किया कि वह स्थान चुम्बकीय गुण प्राप्त कर लेता है। फिर तो शिष्यों, अनुयायियों और प्रशंसकों की भीड़ें जुड़ने लगती हैं और देखते-देखते वहाँ एक बस्ती-सी बन उठती है। यहाँ भी धीरे-धीरे एक ख़ानक़ाह और एक 'जमाअतख़ाना' (सामुदायिक निवासगृह) बनकर खड़े हो गये। और बाबा फ़रीद को श्रद्धांजलि देने के लिए दूर-दूर से लोग आने लगे। स्वभावतः बाबा फ़रीद की ख्याति और लोकप्रियता

अजोधन के क़ाज़ी साहब के लिए ईर्ष्या और बैर का कारण बन उठीं। उन्होंने वहाँ के जागीरदारों और अमलेवालों को भरा-भड़काया। परिणाम यह हुआ कि फ़रीद और उनके परिवारवालों को परेशान किया जाने लगा। यहाँ तक बड़े क़ाज़ी साहब कि बाबा फ़रीद का खून करने के लिए उन्होंने किसी को ठीक किया; मगर शैख़ निज़ाम-उद्-दीन औलिया के अनुसार, वह आदमी ही भाग खड़ा हुआ जब उसे लगा कि बाबा से तो कुछ छिपा न था। क़ाज़ी ने तब वहाँ के हाकिम के कान भरे कि फ़रीद की ख़ानक़ाह में तो नाच-गाना जैसी 'ग़ैर इसलामी हरकतें' भी चला करती हैं। हाकिम ने फ़रीद और उनके बच्चों का वहाँ रहना भारी कर दिया। किन्तु अन्त में धैर्य और सहनशीलता के सहारे फ़रीद ने विरोधियों से मुक्ति पा ली। कहा जाता है कि हाकिम को किसी अनचाहे रोग ने घेरा और कुछ ही दिनों में उसकी मृत्यु हो गयी।

अजोधन के इसी निवास-काल में बाबा फ़रीद ने विवाह किये और एक बड़े परिवार के कर्ता-धर्ता बन उठे। ऐसा माना जाता है कि उनकी तीन पत्नियाँ थीं, जिनमें एक सुलतान बलबन की शहज़ादी थी। अवश्य, इतिहास में इसकी सम्पुष्टि नहीं मिलती। यों भी, जो फ़रीद सुलतान और अधिकारी वर्ग से कोई लगाव नहीं चाहते थे, वही क्या शहज़ादी से विवाह के लिए सहमत होते! फिर, अगर हुए होते सुलतान के दामाद, तब इतनी अधिक ग़रीबी क्यों! लगता यही है कि सब अली असग़र चिश्ती की अद्भुत कल्पनाओं की उछल-कूद है। अपनी पुस्तक 'जवाहिर-ए-फ़रीद' में उन्होंने न जाने कैसी-कैसी चमत्कारी और असम्भव घटनाओं का उल्लेख किया है। फ़रीद के कई-कई लड़के और लड़कियाँ थीं, और पोते-पोतियाँ तो कितने ही। जान पड़ता है कि सूफ़ियों की स्वीकृत प्रथा के अनुसार, प्राप्त स्वैच्छिक भेंटें सब औरों में बाँट दी जातीं; फ़रीद का परिवार इसलिए कष्ट ही कष्ट भोगा किया। स्वयम् फ़रीद इस ओर से सर्वथा उदासीन रहते। उनके लिए इसमें भी ईश्वर की इच्छा होती। सारा समय ही उनका उपासे रहते आराधना को भेंट हुआ रहता।

बाबा फ़रीद की ख्याति और प्रभाव दूर-दूर तक फैले हुए थे, यह इसी से प्रकट था कि उनके 'जमाअतख़ाने' में आनेवाले लोग विभिन्न वर्गों और श्रेणियों के हुआ करते। उनके अपने साधक शिष्यों के अतिरिक्त, इस आध्यात्मिक केन्द्र के प्रति आकर्षित होनेवालों में अच्छे-अच्छे विद्वान् भी रहते, व्यापारी-व्यवसायी और अधिकारी वर्ग के लोग भी। सभी अपने-अपने कार्यक्षेत्र से स्थायी या अस्थायी विराम लेकर आये होते और अपने आध्यात्मिक उन्नयन के लिए तपी जीवन अपनाते। इतिहास में ऐसे कई जाने-माने व्यक्तियों के नाम आये हैं जो यहाँ विनम्र भाव से सेवा-रत रहे और अभीष्ट शान्ति और सान्त्वना लाभ कर सके।

क्या ये कारण फ़रीद की इतनी असीम लोकप्रियता के? सन्त लोग होते ही

सर्वप्रिय हैं। जहाँ एक बार उनकी साधुता और आध्यात्मिक सिद्धियाँ सामने आयीं कि फिर अनुयायियों की संख्या बढ़ते समय नहीं लगता। भारत में तो विशेषकर सन्तों की परम्परा सनातन है। सामान्य मृत्युधर्मी मानव सदा ही कष्टों-क्लेशों और नाना व्याधियों का ग्रास हुआ रहता है। हर क्षण उसकी आत्मा सहारा और सान्त्वना उड़ीकती हुई द्वार-द्वार भटका करती है। और जब दिखता है कि अपने-पराये सभी अन्यमना हैं, अपने-अपने धन्धों में लीन, तब बरबस उसका ध्यान सूफ़ी सन्तों की दिशा में दौड़ता है। एकमात्र वे ही होते हैं जिनके पास समय हो, भावना हो, और सम्भवत: उसकी समस्याओं का समाधान भी ! अनेक-अनेक ऐसे भी लोग होते हैं जो दुनिया-संसार को भर-भोग चुके हैं, और अर्थ लिप्साकी असारता को, यहाँ के आडम्बरों, भोग-विलास और जीवन की क्षण-भंगुरता को बूझ चुके हैं, और अब जिन्हें केवल आन्तरिक शान्ति और आध्यात्मिक मार्गदर्शन की लौ लगी हुई है। सूफ़ी सन्तों की कुटिया छोड़ कहाँ और जाते ये लोग ! बाबा फ़रीद चिश्ती सिलसिले के प्रमुख तो थे ही, अपनी धर्मिष्ठता, तपस्या-भक्ति, आतिथ्य भाव, दीन दु:खी के लिए सहृदयता, और सहज विनम्रता एवं अशेष करुणाशीलता के लिए जैसी उनकी ख्याति थी उसे देखते भारतीय मुसलिम सन्तों में सबसे अधिक लोकप्रिय वे होते ही।

फ़रीद का यहाँ की जनभाषा 'हिन्दवी' का उपयोग करना उन्हें सामान्य जन के और निकट ले आया। उर्दू और मुलतानी पंजाबी का यह पूर्वतम मिश्र रूप ही आम लोगों की भाषा था। उलेमा लोग और अधिकारी वर्ग अपने काम फ़ारसी में करते थे। इनसे भिन्न बाबा फ़रीद अपने श्रोता समाज से 'हिन्दवी' में बोलते, जिसे वे सब समझते थे और घर की ही भाषा मानते थे। फ़रीद पंजाबी के एक बहुत बड़े कवि भी थे : सर्वप्रथम कवि, जिन्होंने आध्यात्मिक एषणा जैसे गूढ़ विषय को, वहीं के ग्राम परिवेश से चुने हुए बिम्बों और चित्रों द्वारा सजा-सँवार कर, जनभाषा में प्रस्तुत किया। नि:सन्देह ऐसा काव्य लोकप्रिय होता ही। लोग फ़रीद के 'सलोकों' का पाठ करते और भावमय होकर जब गाने लगते तब तो आनन्द-विभोर ही हो जाते। कभी जब जुड़ आता उसमें क़व्वाली और ग़ज़लों का भी गायन, और विशेष अवसरों पर लय-बंधा सामूहिक नर्तन भी, तब तो परमानन्द का एक विशेष समाँ ही बँध उठता। उस समय मुरशिद (गुरु) और मुरीद (शिष्य) ही नहीं, और भी जो कोई वहाँ होते, सब आपा खोये, एक बृहत् समांगी इकाई हो उठते। सभी को प्रतीत होता उस समय कि सब भेद-भावनाओं से परे, वे सभी एक हैं और एक ही है सबकी आस्था-भावना। यही होती चूड़ा भी पारस्परिक समता और समानता की।

फ़रीद एक प्रकाण्ड विद्वान् भी थे और उत्तम शिक्षक भी। उनके पास दूर-दूर के विद्वद्गण अपनी धर्मशास्त्र सम्बन्धी समस्याएँ लिये हुए आते और उनके

साथ विचार-विमर्श करके सन्तुष्टि लिये लौट आते। शिक्षक के रूप में उनके सभी शिष्य उन्हें सम्पूर्ण सम्मान देते और नित्य नये-नये उपस्थित होते रहते कि सूफ़ीवाद के रहस्यों का ज्ञान देने के लिए उन्हें भी दीक्षित कर लिया जाये। कदाचित् शिक्षण में वे बहुत कठोर थे, पर यह विशेष गुण भी था उनमें कि जैसा कहते वैसा स्वयम् करते भी थे।

एक बात महत्त्व की और। फ़रीद ने भारतीय मानस के साथ अपना ही तादात्म्य नहीं किया, सूफ़ीवाद का भी भारतीयकरण किया। भारत-स्थित सूफ़ियों को साथ रखते हुए, उन्होंने वेदान्त, बौद्धधर्म और भक्ति आन्दोलन की अनेक विशेषताओं को ग्रहण किया और अपने यहाँ समोया। भारतीय योगियों का अनुकरण करते हुए, सूफ़ियों ने काय-तप की अनेक कठोर विधियाँ अपनायीं और बौद्ध भिक्षुओं की नाईं भिक्षाटन के लिए भी जाने लगे। यही नहीं, जैसा भक्ति संप्रदाय में होता, प्रियतम की नाम-धुन में विभोर हुए, सूफ़ी लोग भी गायन-नर्तन करने लगे। भाषा भी जनता की ग्रहण कर ली। यही भाषा अब इनके विचार-भावों का माध्यम बन चली। इस सबके अतिरिक्त, जैसा भक्तिवादी समाज में होता, ये लोग भी जाति-पाँति, मत-मतान्तर और राष्ट्रीयता के विभेद भुलाकर निम्न वर्ग के स्त्री-पुरुषों को भी मुक्त भाव से अपने में सम्मिलित करने लगे। एक अन्य समानता भक्तिवादियों और सूफ़ियों में पहले से ही थी। विवाह-प्रथा सूफ़ियों में भी प्रचलित थी : विवाह होते और सन्तान-पालन किया जाता। इनकी तपश्चर्या और परलोक-परायणता का अर्थ संन्यास और सांसारिकता से निवृत्ति नहीं होता था। मनुष्य सहजीवी प्राणी था : उसके सुख-दुःख के प्रति सर्वथा निरपेक्ष ये नहीं होते थे। इनका प्रेमभाव ईश्वर और उसकी सृष्टि दोनों के ही प्रति था। यही भाव उनकी आध्यात्मिक दृष्टि-भावना का भी आधार-मूल था। इसके अतिरिक्त सूफ़ियों का ध्यान जीवन-पद्धति पर विशेषकर रहता, दार्शनिक चिन्तन अथवा बौद्धिक विवेचन पर नहीं। भक्तिवाद के जैसा, सूफ़ीवाद का भी प्रयत्न रहा कि त्याग और भक्तिभाव दोनों में समन्वय हो। पर इन सभी से कहीं अधिक महत्त्व की बात यह है कि सूफ़ियों ने जिस एक सिद्धान्त को बड़ी भावमयता के साथ अपना गिना, अर्थात् 'ईश्वर के साथ तादात्म्य, अथवा 'अन्तयुक्त का अन्तमुक्त में विलय' का सिद्धान्त, वह वेदान्त का ही एक चिरन्तन सिद्धान्त था। इनका 'तरीक़त' प्रेम का ही मार्ग था और 'परम सत्यता का दर्श' भी 'ईश्वर प्रेम' का ही पर्याय।

फ़रीद के अन्तिम दिन बड़े कष्ट के रहे। समझते नहीं बनता कि इतने-इतने अनुयायी और इतनी व्यापक लोकप्रियता रहते, ख़ानक़ाह की सारी आय और भेंटें सहसा कहाँ लुप्त हो गयी। लगता है जब अन्त द्वारे लगा तब बाबा फ़रीद और परिवार के लिए घर में कुछ न था। पर फ़रीद थे कि यह कुछ भी उन्हें अपने आराधन,

अनाहार और अनुताप के नियम-पालन में शिथिल तक न कर सका ! और अन्ततः 15 अक्तूबर 1265 को अन्त क्षण आया। तीन बार अपनी प्रार्थना में बैठे; होंठों पर ये शब्द आये: 'तू ही नित्य है, तू ही अनश्वर !' और वे नहीं रहे। मध्ययुग का एक महान् सन्त उठ गया।

बाबा फ़रीद के उपदेशों के आधारभूत सूत्र तीन हैं: ईश्वर-प्रेम, मन की शुचिता, और धन-सम्पदा एवम् सांसारिक उत्कर्ष के प्रति अनासक्ति। ईश्वर-प्रेम, मानव-मात्र के प्रति प्रेम की ओर प्रेरित करता है। वही मूल है सबके प्रति कृपाभाव सौजन्य, उदारता, और उच्चाशयता का। मन की शुचिता के द्वारा अहंभाव, अभिमान, क्रोध, कामुकता और लोभ-लिप्सा से विमुक्ति मिलती है। यही नहीं,मन फिर बहिर्मुखता से बचता हुआ आन्तरिक शान्ति खोजने लगता है। और यही तो प्रथम चरण होता है आध्यात्मिक उपलब्धि का फ़रीद ने 'भगवान् से भय' पर बहुत बल दिया है। कारण व्यक्ति को तब 'रोज़े-जज़ा' का ध्यान बना रहता है और वह किये हुए कर्मोंको आप भी समझने और आँकने की चेष्टा करता है। परोक्ष रूप से यह जीवन के नैतिकतापूर्ण बनने में सहायक होता है। सच तो, नैतिकता अर्थात् नैतिक जीवनचर्या के विषय में पूर्ण सचेत रहे बिना रहस्यवादी जीवन का सूत्रपात ही नहीं होता। रहस्यवाद और सदाचार का यथार्थ बोधभाव मानो हाथ में हाथ दिये रहते हैं। फ़रीद ने तो सदा ऐसे जीवन-यापन पर बल दिया जो अकिंचनता का हो, जहाँ धन-सम्पदा का परित्याग किया गया हो, और जो सांसारिक एषणा-कामनाओं से अनछुआ रहे। इस क्षणिक और भंगुर संसार के प्रति मोह-माया का फल कष्ट और क्लेश ही होते हैं और होते हैं अन्तहीन बाधा-बन्धन जिनसे पार मृत्यु ही दिला पाती है। कभी एक पल के लिए भी फ़रीद ने बिसरने नहीं दिया कि अन्तिम उद्देश्य जीवन का अपने प्रीतम के साथ एक हो जाना ही है। इसीलिए उनका प्रयत्न रहा कि उस मनोनीत लक्ष्य के एकमात्र साधन इस प्रेम-पथ से सभी अवगत हों। अपने शिष्यों को भी उन्होंने यही सिखाया कि अकिंचनता और अनुताप-युक्त जीवन को अपनायें और दुःखी-दरिद्रों की सेवा को भगवद्-भक्ति गिनें। फ़रीद ने कोई फ़िलसफ़ा जैसा प्रस्तुत नहीं किया; उन्होंने तो जीवन के एक रूप और आचरण की एक पद्धति पर जोर दिया है। अपने यहाँ दीक्षित होनेवालों से उन्होंने पहले 'शरीअत' के नियमों का यथावत् पालन कराया, उसके बाद ही पग-पग करके 'तरीक़त', फिर 'मारफ़त', और अन्त में 'हक़ीक़त' की ओर ले गये। प्रत्येक ही तो यात्रा का एक चरण था, जो अपनी साधना की पूर्ति माँगता और अपेक्षित तप की कठोरताओं का पालन। इस प्रकार से फ़रीद ने अपने सभी अनुयायियों में जीवन-आचरण की शुचिता और उस परम सत्य और अनन्त ईश्वर को पाने की उत्कट कामना जाग्रत की।

फ़रीद ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि ईश्वर के आगे सभी मनुष्य बराबर हैं, भले ही मत या धर्म किसी का कुछ भी हो। 'फ़रीदी लंगर', अर्थात् सबके लिए समान भोजन का नियम, सभी भेदभावों को दूर करने का ही एक और उपाय था।

एक और पक्ष भी है फ़रीद की उपदेशना का जो आधुनिकता का स्पर्श लिये हुए दीख पड़ेगा। मध्य युग के उस त्वरामुक्त काल में उनका आग्रह रहता कि रहस्यवादी और दरवेश के पास सबसे मूल्यवान् वस्तु समय ही होता है। जीवन छोटा रहता है और रहस्यवादी का यात्रापथ सुदीर्घ। उसे, इसलिए, अपने समय का पूरे से पूरा लाभ उठाना आवश्यक है। उनकी ख़ानक़ाह में अनुशासन कड़ा था, और जिसका जो कार्य नियत था उसमें समय की पाबन्दी का पूरा ध्यान रखना होता।

क़ुरान के 'ज़कात' सम्बन्धी आदेश पर भी फ़रीद ज़ोर दिया करते। लोगों को अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशत दान के रूप में देना चाहिए। दान तो अपने ही एक बहुत बड़ा गुण हुआ करता है, और सबसे बड़ा दान होता है अपना सर्वस्व औरों को दे देना। अधिकार-सम्पत्ति यों भी आध्यात्मिक जीवन-यापना में बाधा बना करती है। इसलिए कोई जितना ही दान कर दे उतना ही उसके लिए अच्छा रहता है।

आचार-व्यवहार के जिन नियमों का फ़रीद ने पालन किया और दूसरों को उपदेश दिया, वे सचमुच ही एक पहुँचे हुए सन्त के जाने-बूझे हुए जीवन के ज्ञान-बोध को प्रतीकित करते हैं। उल्लेखनीय तो यह कि फ़रीद ने स्वयम् अपने जीवन की दिशा और गति बनकर उन्हें जीवन्त वास्तविकता प्रदान कर दी।

3

फ़रीद मस'ऊद या फ़रीद सानी

धर्म के इतिहास में एक बड़ी असाधारण और विचित्र ही घटना कही जायेगी जिसके फलस्वरूप बाबा फ़रीद का लेखन सुरक्षित रह गया। माना तो ऐसा जाता है कि फ़रीद ने अपनी काव्य-रचना अरबी, फ़ारसी और उर्दू-हिन्दवी, पंजाबी आदि कई स्थानीय भारतीय भाषाओं में की। पर आश्चर्य की बात यह कि अरबी, फ़ारसी और उर्दू के कुछ छिटपुट दोहे ही अब उपलब्ध हैं; और शोधकर्ताओं द्वारा इन्हें भी अप्रामाणिक और जाली कहा गया। उसने महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध 'लाइफ़ ऐण्ड टाइम्स ऑव फ़रीद-उद्-दीन गंज-ए-शकर' में प्रो. के. ए. निज़ामी ने तीन पुस्तकों का उल्लेख किया है : (1) फ़वाद'ईद-उस-सलाकीन—मलफ़ाज़ (क़ुत्ब-उद्-दीन बख़्तियार काकी की वार्ताएँ) रचयिता : शैख़ फ़रीद-उद्-दीन; (2) असरार-उल-औलिया (बाबा फ़रीद की वार्ताएँ) संकलनकर्ता : शैख़ बद्र-उद्-दीन इसहाक़; और (3) रब्रात-उल-क़ुलाब : मलफ़ाज़ (बाबा फ़रीद की वार्ताएं) संकलनकर्ता : शंख़ निज़ाम-उद्-दीन औलिया। मगर प्रो. निज़ामी का ही कहना है कि भीतरी और बाहरी प्रमाणों को देखते हुए ये तीनों ही मनगढ़न्त लगती हैं। अत: बाबा फ़रीद की जीवनी तैयार करने में इन्हें प्रामाणिक सामग्री के रूप में नहीं लिया जा सकता। फ़रीद के उत्तराधिकारियों या अनुयायियों में से भी किसी ने उनके लेखन को सुरक्षित रखने का कष्ट नहीं किया। केवल पंजाबी की काव्य-रचनाएँ रहीं इनकी, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक चलती आयीं कि अन्त में गुरु नानक जैसे पारखी प्रेमी मिल गये। गुरु साहब ने अपने लेखन सहित सावधानी के साथ इन्हें भी सँभाले रखा और यथासमय अपने उत्तराधिकारी गुरु अंगद को सौंप दिया। फिर जब ई० 1604 में गुरु अर्जुनदेव (ई० 1563-1606) ने 'आदिग्रन्थ' के लिए सामग्री संकलित की तो 'सलोक शैख़ फ़रीद के' शीर्षक से इसे भी गुरबानी के अन्तर्गत सम्मिलित करके पवित्र और अमर बना दिया।

प्रारम्भिक 'जनसाखियों' के अनुसार गुरु नानक (1469-1539) दो बार पाकपत्तन गये थे। वहाँ उनकी फ़रीद के एक आध्यात्मिक उत्तराधिकारी शैख़ इब्राहीम के साथ बातचीत हुई थी। तब ही शैख़ इब्राहीम ने बाबा फ़रीद की

रचनाएँ सुनायी थीं। इन रचनाओं की विषयवस्तु है : उस परम सत्यता के साथ एकीभूत होने की उत्कट लालसा, मानव प्राणी की नश्वरता, भौतिक वस्तुओं और सांसारिक वैभव की अनित्यता, ईश्वर के प्रति उत्कट प्रेमभाव, ईश्वर की दृष्टि में मानव प्राणियों की समानता, मृत्यु की महत्त्वपूर्णता, क़यामत का दिन, पापकृत्यों के लिए दण्ड, आध्यात्मिक और सांसारिक जीवन का कायगत समेकन, नैतिक गुणों का प्रवर्धन, आदि। आश्चर्य नहीं कि गुरु नानक को, जिनकी न हिन्दू धर्म से अभिन्नता थी न इसलाम से, इस समूची विषयवस्तु के साथ एक आन्तरिक सदृशता प्रतीत हुई। सचमुच कैसी एक विवशकर सहिष्णुता और मानवीयता बसी हुई थी उन काव्य-रचनाओं में, जो उन्हें इतना आकर्षित और प्रभावित कर गयी कि उन्होंने सबको लिपिबद्ध कराया, जिसमें भावी पीढ़ियों के हितार्थ उपलब्ध हो सकें।

कम-अधिक तीन सौ वर्ष तक तो इन काव्य-रचनाओं के रचनाकार के विषय में किसी को सन्देह नहीं हुआ। सभी मानते थे कि फ़रीद-उद्-दीन गंज-ए-शकर ही इनके रचयिता हैं। विवाद तो तब उठा जब एम. ए. मैकॉलिफ़ का महा-काय ग्रन्थ 'द सिख रिलिजन' सामने आया। इसमें कहा गया : 'गुरु नानक का जन्म 1469 में हुआ था : मूल फ़रीद से इसलिए उनकी भेंट होती ही कैसे ! गुरु नानक सम्बन्धी पुराने ब्यौरों में भी यही आया है कि उनकी भेंट दो बार शेख़ ब्राह्म (इब्राहीम) से हुई, जो फ़रीद के उत्तराधिकारी थे और 'फ़रीद द्वितीय' के नाम से जाने जाते थे। यह निश्चित है कि 'ग्रन्थ साहिब' में 'फ़रीद' के नाम से आये भजन और श्लोक सब शेख़ ब्राह्म के रचे हुए हैं, यद्यपि रचना के साथ अपने उपनाम के रूप में उन्होंने उपयोग उस सिलसिले के प्रवर्तक 'फ़रीद' के नाम का किया है। इसके आगे वहीं शेख़ ब्राह्म का सविस्तार वशक्रम दिया गया है और बताया है कि इनके अन्य नामों और उपाधियों में 'फ़रीद सानी' और 'फ़रीद द्वितीय' भी थे। किन्तु अच्छे और सुप्रतिष्ठित लोग दोनों ही पक्षों में हैं। इसलिए इस प्रश्न पर विस्तार से विचार कर लेना आवश्यक है।

प्रो. निज़ामी इन तथ्यों को स्वीकार करते हैं कि बाबा फ़रीद में काव्यरुचि थी और काव्य-रचना भी वे करते थे। यह मानते हैं वे कि स्थानीय मुलतानी में रचे गये उनके एक द्विपंक्तिक (दोहे) को अमीर खुर्द ने 'सिय़ार-उल-औलिया' में उद्धृत किया है। किन्तु, साथ ही, यह सोच-सोचकर वे कुछ अटपटाये हुए से भी हैं कि निज़ाम-उद्-दीन औलिया या किसी अन्य उत्तराधिकारी ने कहीं जो बाबा फ़रीद की काव्य-रचनाओं का उल्लेख किया हो ! प्रो. निज़ामी आगे चलकर यह भी कहते हैं कि उन श्लोकों आदि के भाषागत विश्लेषण से यह भी प्रकट हो जाता है कि उनमें ऐसे मुहावरे और शब्द-प्रयोग भी आये हैं जो काफ़ी परवर्ती काल के हैं ! पर ध्यान देने योग्य बात यहाँ यह है कि उक्त दोनों में से पहला कथन नकारात्मक

है और दूसरे की पुष्टि के लिए कोई उदाहरण नहीं है ! प्रो. निज़ामी की स्वयम् अपनी धारणा है कि श्लोकों में 'शैख़ का पारम्परिक उक्तिभाव' विद्यमान है ! किन्तु निष्कर्ष में निज़ामी यही कहते हैं कि काव्य-रचनाएँ सम्भवतः शैख़ इब्राहीम की ही हैं; वे ही जो गुरु नानक के समकालीन थे !

हाल का एक अन्य प्रकाशन है 'पंजाबी सूफ़ी पोएट्स'। इसकी लेखिका, लाजवन्ती रामकृष्ण, मैकॉलिफ़ के निष्कर्ष की सम्पुष्टि करती हैं और समर्थन में फ़रीद के निम्न श्लोक का उल्लेख करती हैं :

शैख हयाती जग न कोई थिर रहिआ।
जिस आसन हम बैठे केते बैसि रहिआ ।।

आगे कहती हैं ये : 'इन पंक्तियों से ही स्पष्ट हो जाता है कि रचनाकार फ़रीद-उद्-दीन नहीं, कोई वंशज थे, जो उस पावन पीठ पर प्रतिष्ठित थे और इसीलिए 'फ़रीद द्वितीय' हुए।' निष्कर्ष बड़ा विचित्र है। श्लोक में केवल जीवन की नश्वरता की बात आयी है, और शैख़ फ़रीद के पूर्वजों की मृत्यु की ओर संकेत किया गया है। बाबा फ़रीद के भी वो आध्यात्मिक पूर्वज तो थे ही : बख्तियार काकी और मु'इन-उद्-दीन चिश्ती। और फ़रीद की अपनी पितृ-परम्परा उमर-फ़ारूक़ तक तो खोजी ही जा चुकी है। ऐसे में लाजवन्ती रामकृष्ण के साथ सहमत हो पाना कठिन ही लगता है। क्योंकि इतने महत्त्वपूर्ण विषय का निर्णय मात्र एक द्विपंक्तिक के अर्थभाव पर नहीं टिकाया जा सकता। विशेषकर जब हमारे मतानुसार वह भी भ्रान्तिमूलक हो।

उन काव्य-रचनाओं के कृतित्व का जो विश्लेषण मैकॉलिफ़ ने प्रस्तुत किया है वह भी निरा रेखरूप ही है। सचमुच यह कोई तर्क नहीं बनता कि क्योंकि गुरु नानक (1469-1539) और बाबा फ़रीद (1173-1265) समकालीन नहीं थे, और महज़ क्योंकि गुरु नानक की इब्राहीम (दिवंगत 1552) से भेंट हुई, वे रचनाएँ निःशंक भाव से शैख़ इब्रहीम का कृतित्व थीं। प्रत्यक्ष ही यह असंगत लगता है। दूसरे, मैकॉलिफ़ के कथनानुसार, 'शैख़ ब्राह्म का बड़े-बड़े सन्तों की सूफ़ी में एक प्रतिष्ठित स्थान है। उन्हें फ़रीद सानी या फ़रीद द्वितीय भी कहा जाता है, सलीस फ़रीद या पंच फ़रीद, शैख़ ब्राह्म कलाँ, बलराम, शैख ब्राह्म साहिब और शाह ब्राह्म भी। आश्चर्य इस बात का है कि जिस व्यक्ति की इतनी ऊँची-ऊँची गुंजार-भरी उपाधियों हों, उसका साहित्य के इतिहास में कहीं नामोल्लेख तक न हो—न सूफ़ीवादी वर्ग के अन्तर्गत, न मुसलिम कवियों की पंजाबी काव्यकृतियों में—जबकि फ़रीद शकरगंज की, कवि और सन्त दोनों के नाते, प्रशस्तियों का अन्त नहीं। मैकॉलिफ़ ने, जैसा अन्यत्र किया, शैख ब्राह्म की भी महत्ता को समर्थन उनके चमत्कारों के आधार पर दिया है। खेद तो इस बात का है कि बाबा फ़रीद के जीवन का जो विवरण मैकॉलिफ़ ने दिया वह सारा ही

इस कारण विकृत हो रहा कि इन्होंने ज़ोर चमत्कारों पर दिया। इतने अविवेकी और सहज विश्वासु लेखक जान पड़ते हैं यह कि जो भी जिसने आगे प्रस्तुत कर दिया उसे ही अपनी पुस्तक 'द सिख रिलिजन' में ग्रहण कर लिया।

इसके अतिरिक्त, 'कवि के उपनाम' की सारी कल्पना भी मैकॉलिफ़ का आविष्कार है। प्रो. निज़ामी ने सात नाम बाबा फ़रीद के आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों के दिये हैं, और पच्चीस उनकी ख़ानक़ाह के 'सज्जादः नशीदों' (गद्दी के उत्तराधिकारियों) के। पर इनमें से किसी ने जो फ़रीद के नाम का उपयोग 'उपनाम के रूप में' किया हो। सिक्ख गुरुओं से भिन्न, सूफ़ी सन्तों में तो वैसे भी अपने किसी आध्यात्मिक मूलपुरुष के नाम का कवि-गत उपनाम के रूप में उपयोग नहीं करते।

मैकॉलिफ़ ने बाबा फ़रीद के छत्तीस वर्ष वन में तप करने का उल्लेख किया है। यह भी कहा है इन्होंने कि दोबारा जब बारह वर्ष के लिए गये वह, तब 'इस विचार से कि किसी जीवित प्राणी को कष्ट न पहुँचे, उन्होंने अपने पेट पर काठ की एक छोटी-सी रोटी बाँध ली थी और, ऐसा कहा जाता है कि, अपने इस व्रत की पूरी अवधि वे उस काल्पनिक आहार पर ही रहे।···एक दिन भूख की दारुण पीड़ा में, कहते हैं, उसी रोटी का उन्होंने टुकड़ा कुतरा कि उससे भूख का शमन होगा। काठ का एक तख्ता और उस पर उनके दाँतों के माने हुए निशान पाकपत्तन में सुरक्षित बने हुए हैं।' मैकॉलिफ़ तो फ़रीद के श्लोकों का अनुवाद करते समय मूल जीवन-प्रसंगों से इनका परस्पर सम्बन्ध तक बनाये रखना भूल गये। एक प्रत्यक्ष और अकाट्य सन्दर्भ नीचे दिया गया है :

फ़रीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ।।
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहगिने दुख ।।28।।

मैकॉलिफ़ और आगे कहते हैं कि इस बारह वर्षीय तप के तीसरे खण्ड में उन्होंने (फ़रीद ने) अपने को पैरों के बल कुएँ में लटकवाया। यह वही 'चिल्लाह-ए-माकूस' है जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया। इस लटके होने की स्थिति में पक्षी उनके बालों में घोंसले बनाते हैं और हिंस्र जीव देह में ठोंगे मारते हैं या मांस ही नोच ले जाते हैं। मैकॉलिफ़ ने बाबा फ़रीद के इस तप-रूप के प्रमाण में उनकी निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं :

फ़रीद तेरा तन यूँ टँगिया होइआ है
सिर आलाणा बन गिआ है
का पैरा नूँ ठुंगदे हन ।।

उक्त पंक्तियाँ बाबा फ़रीद की हैं, यह स्वीकार कर लेने के बाद मैकॉलिफ़ ने एक आश्चर्यजनक वक्तव्य ऊपर से जोड़ दिया। कहते हैं मैकॉलिफ़ कि 'ऊपर के त्रिपंक्तिक को ही आगे चलकर शेख़ ब्राह्म के श्लोक क्रमांक 90, 91, 92 के रूप

में विस्तारित कर दिया गया। तीनों श्लोकों पर एक दृष्टि डालकर यह परखने का प्रयत्न करें कि बाबा फ़रीद के जीवन और काव्य से इनका सम्बन्ध भाव जुड़ता भी है या नहीं।"

फ़रीदा तनु सुका पिंजरु थीआ तलीआं खूंडहि काग ।।
अजै सु रबु न बाहुड़िओ देखु बंदे के भाग ।।90।।

कागा करंग ढडोलिया सगला खाइ आ मासु ।।
ए दुइ नैना मति छुहउ पिर देखन की आस ।।91।।

कागा चूंडि न पिंजरा बसै त उडरि जाहि ।।
जितु पिंजरै मेरा सहु बसै मासु न तिदू खाहि ।।92।।

मैकॉलिफ़ ने इस बात का उल्लेख नहीं किया कि 'चिल्लाह्-ए-माकूस' से सम्बन्धित जिस श्लोक का उन्होंने अनुवाद किया वह 'ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित किया हुआ नहीं मिलता। उसके स्थान पर यही 90, 91 और 92 संख्यक श्लोक मिलते हैं। चारों श्लोक बाबा फ़रीद के जीवन की एक ही घटना से सम्बद्ध हैं। कठोर तप करते हुए अपने को उन्होंने कुएँ में उलटा लटका लिया है, देह निरी पंजर हो गयी है, पक्षियों ने बालों में घोंसले बना लिये हैं, और कौए आ-आकर देह पर ठोंगें मारते हैं। पहले श्लोक में फ़रीद अपनी खिन्नता व्यक्त करते हैं कि इतना-इतना आत्मदण्ड और काय-कष्ट झेलते होते भी वह प्रभु तो अभी तक आये नहीं! और वे जैसे सोचते रह जाते हैं कि इससे भी भीषण काय-दमन करना होगा क्या! श्लोक संख्या 90 में यही बात दोहरायी गयी है। यह श्लोक ही मात्र कुछ परिवर्तित रूप है उस पहलेवाले का जो 'ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित नहीं है। सम्भव है यह परिवर्तन फ़रीद की रचनाओं के मौखिक संचरण में कहीं आ गया हो। पर श्लोक संख्या 90 और 91 तो उसी मूल विषयवस्तु को बनाये लिए चल रहे हैं। अवश्य, अभिव्यक्ति में भाव अब निराशा का नहीं, किंचित् आशा का है। अब फ़रीद कौओं से मनुहार करते हैं कि आँखों पर ठोंगे न मारें, उन्हें प्रियतम को देख पाने की अभी आशा है। रहस्यवादी भाषा में कहें तो उन्हें प्रीतम के साथ अपने 'वस्ल' का विश्वास है और, इसीलिए, भले वह आप ठठरी रह गये हैं और देह का मांस नोचा-खसोटा पड़ा है, मगर भीतर की आग ज्यों-की-त्यों दहकती बनी है और प्रभु-मिलन की लगन भी वैसी ही अटल और अक्षत। अन्तिम श्लोक संख्या 93 में फ़रीद निहोरा करते हैं कौओं से कि उनके हृदय-भाग को अछूता रहने दें, क्योंकि वहीं तो भगवान् का निवास रहता है। वही स्थान प्रभु का मन्दिर है और उसे तो सुरक्षित ही बनाये रखना है। फ़रीद ने जब 'नयना न खाइयों' की

याचना की थी तब ईश्वर के 'सगुण' रूप को देख पाने की आशा बाँधी थी, अब जिस अनमोल रतन को जी में ससाये हुए हैं, वह उसी का 'निर्गुण' रूप है। चारों श्लोक एक ही अनुभूति से जुड़े हुए हैं। एक ही भाषा है चारों में, और एक ही रूप निरूपण का भी। रचनाकार का व्यक्तित्व तक आप से आप झलक आता है। कवि और सन्त दोनों प्रत्यक्ष ही एक व्यक्ति हैं।

इस विवाद से सम्बद्ध एक विचारणीय बात और भी है। बाबा फ़रीद की अरबी, फ़ारसी, हिन्दवी और पंजाबी में जितनी भी रचनाएँ उपलब्ध हैं उनसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि वे कवि थे। इसकी सम्पुष्टि भी उन विद्वानों के द्वारा होती है जिन्होंने भारत में रहस्यवाद के उदय और विकास पर शोधकार्य किया है। चिश्ती सिलसिले में तो फ़रीद का काव्य बराबर ही गुना और गाया गया। उनके काव्य की एक परम्परा ही जो प्रतिष्ठित हो गयी। बड़ी बात एक यह कि शैख इब्राहीम के जन्म से 150 वर्ष पूर्व लिखित 'सियार-उल-औलिया' में एक पंजाबी द्विपंक्तिक का मिलना अपने में इस बात का पूरा प्रमाण है कि ऐसी काव्य-रचनाएँ इनके जन्म से बहुत पहले भी उपलब्ध थीं। यह अवश्य कि प्रभुत्व फ़ारसी भाषा का होने के कारण ये रचनाएँ महत्त्वहीन बन चुकी थीं। इनका कोई उपयोग था तो इतना ही कि देहातों की जनता का मनोरंजन, या कभी कुछ उपकार भी, किया करें। वास्तव में तो इन रचनाओं का मूल्य आँका ही नहीं गया जब तक 'गुरु-ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित नहीं की गयीं। पर यह सब सम्पुष्टि इसी बात की करता है कि फ़रीद कवि थे और अन्यान्य भाषाओं के संग-साथ पंजाबी में भी उन्होंने काव्य-रचना की। इससे भिन्न, कोई साहित्य परम्परा ऐसी भी है क्या जिससे प्रमाणित हो कि फ़रीद सानी ने कोई काव्य-रचना की? चिश्ती सिलसिले का ऐसा कोई दावा नहीं है, न ही कोई रिकार्ड मिलता है जिससे मैकॉलिफ़ की मान्यता की पुष्टि हो सके कि फ़रीद सानी कवि थे और सन्दर्भित श्लोक उनके ही रचे हुए हैं। इतना और यहीं, कह देना संगत होगा कि जिस सूफ़ी काव्य परम्परा का प्रारम्भ बाबा फ़रीद से हुआ वह उनके 300 वर्ष बाद तक ही एक जीवन्त शक्ति रहा। वारिसशाह, और उनके जैसे अनेक प्रमुख कवियों ने बाबा फ़रीद के प्रति श्रद्धा और सम्माननना व्यक्त की है और उन्हें सर्वप्रथम सूफ़ी कवि स्वीकार किया है। फ़रीद सानी का तो किसी ने नाम तक नहीं लिया, न उनकी किसी रचना का ही कहीं उल्लेख किया। आज भी मुइनु-उद्-दीन चिश्ती की दरगाह पर अजमेर में और निज़ाम-उद्-दीन औलिया की दिल्ली में फ़रीद गंज-ए-शकर की ही रचनाओं का गान किया जाता है: फ़रीद सानी की तो किसी पंक्ति का कहीं नाम भी नहीं आता।

ऐसे भी कुछ आलोचक हैं जो मानते हैं कि अरबी और फ़ारसी के निष्णात् विद्वान् होते हुए, बाबा फ़रीद इन श्लोकों की कल्पना और भावना सम्पन्न भाषा

में अपने को अभिव्यक्त ही न कर सके होंगे। उन्हें सन्देह है कि जब राज्य की और राज्य के विशिष्ट वर्गों की भाषा फ़ारसी थी तो फ़रीद का पंजाबी पर इतना अधिकार ही कैसे हुआ होगा ! वास्तव में तो फ़रीद के जनभाषा पंजाबी के ज्ञाता होने पर आश्चर्य ही न हो, यदि यह ध्यान हो आये कि पितामह उनके जन्म से 50 वर्ष पूर्व ही भारत आ बसे थे, यहीं खोतवाल और मुलतान में फ़रीद का शिक्षण हुआ, और सब 90 वर्ष से अधिक वे पंजाब में रहे। इसके अतिरिक्त, सूफ़ी होने के नाते जन-सामान्य से ही उनका वार्ताचार रहा, राजदरबार और राजवंशियों से वे एकदम अलग-थलग रहे, और धर्म सम्बन्धी कार्यों में उन्होंने स्वभावतः पंजाबी के बोलीगम रूप मुलतानी का ही सदा उपयोग किया। निरा स्वाभाविक कि उनके भीतर का कवि जब प्रकट हुआ तो बचपन और किशोर-काल की भाषा में, और जो दृश्य और बिम्ब काव्य-पंक्तियों में उन्होंने गूँथे वे भी अपने देहाती परिवेश के।

ऐसा किन्तु हुआ हो सकता है कि समय के साथ-साथ ये श्लोक जब पीढ़ी के बाद पीढ़ी मुँहामुँह चले तब भाषा में कुछ फेर-बदल आ गया। यह भी हुआ हो सकता है कि 300 वर्ष के काल में पहले की कुछ पंक्तियों का नवरूप हुआ हो और कुछ नयी जुड़ आयी हों। और फिर, सभी को जब लिपिबद्ध किया गया तब सुधार भी और किये गये हों और भाषा को भी समयानुकूलता का स्पर्श दिया गया हो। पर यह सब जैसा भी हो, प्रस्तुति, शैली और भाव सभी श्लोकों का वह का वही बना है। वही स्पन्दन है सबका, और वही एकमात्र एक आध्यात्मिक लगन। भाषा की भंगिमा भी वही देख मिलती है: फ़ारसी और अरबी की शब्दावली में मुलतानी की घुलावट। देखने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि इन रचनाओं की धुनें सब लोक-संगीत से ली गयी हैं और उपमाएँ ग्राम-जीवन से। अधिकतर श्लोक मॉण्टगोमेरी और मुलतान की जनता के ही सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को प्रतिबिम्बित करते हैं। गहराई में जाकर यदि फ़रीद के जीवन-विवरण का अध्ययन करें और उनकी रचनाओं के साथ संगति बैठायें, तो निष्कर्ष बरबस यही निकलता है कि रचनाएँ सब बाबा फ़रीद गंज-ए-शकर की ही है।

अन्त में गुरु अर्जनदेव द्वारा इन रचनाओं के 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित किये जाने से सम्बन्धित विवाद पर भी विचार कर लें। सच तो, इसे सिक्ख गुरुओं की दृष्टि और भावनागत उदारता ही मानना चाहिए कि अपने धर्मग्रन्थों में उन्होंने एक ऐसे सन्त की वाणी को भी समाविष्ट किया जो मुसलिम था। उन्होंने तो इन रचनाओं का प्रतिष्ठापन किया और इन्हें 'गुरबानी' की समकक्षता प्रदान की। फलतः इनका पाठ भी उसी श्रद्धा भाव के साथ किया जाने लगा जिससे गुरुओं की रचनाओं का। और कारण इन रचनाओं, तथा नानक-पूर्वी 12 भक्तों की रचनाओं के 'ग्रन्थ साहिब' में समाविष्ट करने का इतना ही कि ये सब भी

आध्यात्मिक जीवन के उन पक्षों पर ही बल देते थे, जिन्हें गुरुओं ने सिक्ख समाज के चित्त में स्वयम् बैठाना चाहा।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में बाबा फ़रीद के 4 'सबद' और 114 सलोक सम्मिलित किये गये हैं। वास्तव में 'सलोक सेख फ़रीद के' शीर्षक से आये 130 सलोकों 18 में विभिन्न गुरुओं के रचे हुए हैं, जो वहाँ फ़रीद के 'सलोकों' पर टिप्पणी या वक्तव्य के रूप में आये। यहीं यह भी उल्लेख कर दिया जाये कि फ़रीद के पंजाबी भाषा में उपलब्ध सभी सलोक 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित नहीं हैं। उन १२ भक्तों में से भी किसी की सारी रचनाएँ सम्मिलित नहीं की गयी। गुरु अर्जनदेव चुनाव की बड़ी सूझ-बूझ के साथ करते थे। साथ ही, रचना की प्रामाणिकता के विषय में भी वह निश्चित हो रहना चाहते थे। कुछ रचनाएँ स्वयम् गुरुनानक की भी छूटी हैं। उन भक्तों में से भी कई महत्त्वपूर्ण भक्त कवि छूटे, जैसे तुलसी और मीरा।

गुरु अर्जनदेव ने जब 'गुरु ग्रन्थ साहिब' का संकलन किया तब उन्हें ज्ञात था कि पाकपत्तन में गुरुनानक की भेंट शैख़ इब्राहीम से हुई थी। गुरु नानक की यात्राओं का पूरा ब्यौरा भी उनकी जानकारी में था, जो द्वितीय गुरु, गुरु अंगद देव द्वारा 'जनमसाखी' में दिया गया। उनके संग बाबा बूढ़ा भी थे जो गुरु नानक और उनके जीवन की एक-एक घटना से अवगत थे। जिन लिपिकों को गुरु अर्जन देव ने संकलन के काम में लगा रखा था—जैसे भाई गुरदास, भाई सन्तराम, भाई हरिया और भाई सुखा—वे सभी विद्वान् थे, 'गुरुबानी' के ज्ञाता। इन्होंने किसी प्रकार की कोई भूल नहीं होने दी होगी। यह भी देखने योग्य है कि 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में एक-एक अंश के लेखक का नाम स्पष्ट रूप से दिया हुआ है। फ़रीद सानी सचमुच किसी रचना के लेखक होते तो गुरु अर्जनदेव को इनका नाम देने में कोई कठिनाई न होती। गुरु अर्जनदेव स्वयम् एक उच्चकोटि के कवि और विद्वान् थे। भक्तों की रचनाओं के विषय में किसी प्रकार की सन्दिग्धता का अवसर वह नहीं रहने देते। उन्होंने 'ग्रन्थ साहिब' के संकलन का कार्य-भार पूरी दायित्व-भावना के साथ ग्रहण किया था। उन्होंने जिन रचनाओं को 'बानी' के योग्य समझा उनके मूलपाठ एवं रचनाकार के नाम आदि की यथातथ्यता के बारे में उपलब्ध स्रोतों से पूरी देख-जाँच की है। उनके स्तर का ज्ञानी-सन्त यदि इन रचनाओं को फ़रीद गंज-ए-शकर की मान लेता है तब इस प्रकार के विवाद के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिए।

अच्छा हो इस टिप्पणी के साथ सारे विवाद का अन्त ही कर दिया जाये। अब तो समय भी उसे मिट्टी देने का हुआ।

4

शरीअ़त का कवि फ़रीद

रहस्यवाद का इसलामी रूप ही सूफ़ीवाद हुआ। शरीअ़त पर आधारित है यह और प्रारम्भिक अवस्था में नमाज़, रोज़े, हज और आचरण सम्बन्धी क़ुरान के सभी आदेशों को महत्त्व देता था। तब क़ुरान और हदीस का नियमित पाठ भी आवश्यक था। विकास काल में इस पर ईरानी और भारतीय चिन्तन के प्रभाव आये। भारतीय आदर्शवाद के तो कुछ तत्त्व ग्रहण भी किये गये। सूफ़ीवाद का सबसे प्रमुख सिद्धान्त था, ईश्वर के साथ एकात्म का भाव। जैसा कहा जा चुका है, प्रारम्भिक काल के सूफ़ी लोग तपस्वी हुआ करते थे। धन-सम्पदा और सांसारिक उत्कर्षका इन्होंने स्वयं ही परित्याग किया। सूफ़ीवाद जैसे मध्ययुग के विलासी और आडम्बरी सामन्ती जीवन की प्रतिक्रिया था भी। इन्होंने भीतर से अनुभव किया कि वह सब तो क़ुरान में निर्देशित सादगी और आपसी भ्रातृत्व के नियमों तक का उल्लंघन हुआ। इसीकी फिर प्रतिक्रिया हुई कि शाहों-सुलतानों से इन्होंने मुँह मोड़ा और सभी विषयों से किनारा करके आध्यात्मिक उन्नति की दिशा ले चले। इनका विश्वास था कि प्रेमभाव की साधना द्वारा ही ईश्वर के साथ एकत्व लाभ किया जा सकता है। यही मार्ग था जिसे इन्होंने 'तरीक़त', अर्थात् प्रेम का मार्ग, नाम दिया। सूफ़ीवाद का भाव-सार था: भाव समाधि की अवस्था में ईश्वरीय चेतना की अनुभूति होना। अपने इस सुनिश्चित विश्वास-भाव के अतिरिक्त कि ईश्वर के साथ तादात्म्य हो ही सकता है, जिसे 'वहदत-उल-वजूद' का सिद्धान्त कहा गया, सूफ़ियों ने भावावेग को और जाग्रत करने के लिए गायन-नर्तन के माध्यम का भी उपयोग किया। सूफ़ीवाद के प्रसार की दृष्टि से ईरान में कई 'सिलसिलों' का भी संस्थापन किया गया। इनमें से कुछ तो, ऐतिहासिक विवशताओं के फलस्वरूप, भारत में भी आये।

यही पृष्ठभूमि है जिसे ध्यान में रखकर बाबा फ़रीद के काव्य का अध्ययन करना है। एक प्रसंग में बत चुके हैं कि फ़रीद पंजाबी भाषा के सर्वप्रथम कवि थे। अरबी और फ़ारसी के विद्वान् थे ही, अपनी स्पन्दनशील कल्पनाशक्ति और संवेदनाओं की प्रेरणा पर उन्होंने पंजाबी जैसी ठेठ और देहाती बोली का काया-

पलट कर दिया। इस योग्य उन्होंने बना दिया उसे कि गहन से गहन भावावेगों को व्यक्त कर सके। फ़रीद ही सर्वप्रथम सूफ़ी कवि भी थे। जब भी मनोभाव घेरते, तब पंजाबी में लिखते, और जो लिखते वह बस ईश्वर और मानव प्रेम-का छलकता हुआ उद्‌गार ही होता। फ़रीद चिश्ती सिलसिले के प्रमुख होने के नाते सूफ़ीवाद का औरों को उपदेश ही नहीं देते, सिखाते भी और स्वयम् तो पालन करते ही। कवि थे : इसलिए भाषा और उसकी भंगिमाओं का इतना विकास भी उन्हें करना पड़ा कि सूफ़ीवादी सिद्धान्तों की सूक्ष्मताओं को अभिव्यक्ति दे सकें। साथ ही, उसका ऐसा होना भी आवश्यक था कि जनसमूह की भाषा बनी रहे। कारण, सूफ़ियों का उद्देश्य विशिष्ट वर्ग नहीं, जनवर्ग तक पहुँचना था। इसलिए उन्होंने स्वभावतः मुलतानी पंजाबी के प्रति ध्यान दिया। यही उनकी बचपन से भाषा रही। जनवर्ग को सांसारिक काम-धाम से मोड़कर ईश्वराभिमुख करने की दृष्टि से, फ़रीद ने आस-पास के ग्राम-जीवन से ही बिम्ब और प्रतीक आदि भी चुनकर रचनाओं में गूंथे।

जीवन का तो जो रूप है, उसमें दुःख और कष्ट ही हैं और विषाद और विफलताएँ। इसकी तो अवस्थाएँ ही—बचपन, युवा और वृद्ध—मृत्यु में शेष होती हैं। कितना चाहता है मनुष्य कि तनाव और रोगों से मुक्त रहे, कि इनके अंगी-अंगी कष्ट और क्लेश न ही आयें। बुढ़ापे से तो घिनाता है वह। बुढ़ापा अर्थात् : दिन-दिन थकती काया, दुर्लभ होते देह के सुख और विलास, और अशेष बनते बाधा-बन्धन। और मृत्यु ! वह तो नाना विपत्तियों में भी सबसे त्रासक, सबसे रहस्यमय! हर कोई जानता है जीवन का अन्त मृत्यु है, और यह भी जानता है कि उससे न कहीं बचाव है न छुटकारा। मगर क्या रहता है उसका अपना स्वरूप, और क्या होता है उसके अनन्तर ? ये प्रश्न शाश्वत ही बने हैं। कष्ट और क्लेशों से ही त्राण पाने के लिए मनुष्य का ध्यान साधु-सन्तों की ओर दौड़ता है, उसे पूजा-पाठ की सूझती है। एक सन्तोष अवश्य मिलता है। पर जल्दी ही यह नित की चर्या का अंग बन चलता है, और फिर तो शान्ति का यह स्रोत ही जैसे लुप्त हो जाता है। ऐसी ही अवस्था हो आने पर भावुक आत्माएँ रहस्यवाद की ओर उन्मुख होती हैं। बहिर्जगत् का परित्याग करते हुए ये अन्तर्मुखता का वरण करती हैं और उस दीर्घ और दुर्गम पथ पर अग्रसर होती हैं जो उस परम सत्यता के साथ एक हो पाने का एकमात्र मार्ग है।

फ़रीद को मानव अस्तित्व की इन सीमाओं का ज्ञान था। इसी से उनकी रचनाओं में जीवन की अनित्यता, मृत्यु की विनाशकता, अटूट शोक-सन्ताप, ऐहिक जीवन की तुच्छता और जीने को मिलती कालावधि की सीमितता जैसे विषय ही बार-बार सामने आते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि सदा मृत्यु की ही सोचा करने से इस विवाद को रेखांकन मिला : कि जीवन का तो सच ही अपव्यय हुआ! पर साथ

के साथ ईश्वर-प्रेम की एक लौ भी जाग्रत रही। इससे एक प्रति-सन्तुलन जैसा प्रस्तुत रहा : और इसी में आशावत्ता बनी आयी कि मनुष्य की एक चरम नियति भी होती अवश्य है। फ़रीद ने, इस प्रकार, जहाँ एक ओर त्याग और तप की बात कही, वहीं दूसरी ओर ईश्वर की सृष्टि के प्रति सम्पृक्तता पर भी आग्रह रखा। स्वयम् तपस्वी होने के नाते उन्होंने सदा सादगी और संयम को श्रेष्ठ माना और सत्य, सहनशीलता, पापकर्म से विरति आदि नैतिक गुणों को महत्त्व दिया। पर जब भी कभी उनके अन्तरतम का स्वर मुखरित हुआ तब उसमें केवल ईश्वर-प्रेम की प्राण-प्रेरणा ही गूँजती होती। उन्होंने ईश्वर-प्रेम को ही ईश्वर के साथ एकत्व का, 'वस्ल' का, एकमात्र साधन बताया। जैसा आगे चलकर देखेंगे, फ़रीद स्वयम् इस शीर्ष अवस्था तक नहीं पहुँच पाये। 'अन-अल-हक़' की इस अवस्था का तो प्रत्यक्ष घोष किया मंसूर ने। यही होती है अवस्था जहाँ न स्वर्ग की कामना रह जाती है न नरक का भीति-भाव, जहाँ प्रार्थना-उपासना की बाह्य विधियाँ निरर्थक बनकर छूट जाती हैं, और जहाँ सभी कुछ तो बिसर जाता है, बना रह जाता है केवलमात्र भावोल्लास, चरम भावानन्द। इसे ही बुल्लेःशाह अपने काव्य में गाया किये। जो हो; प्रीतम प्रभु के लिए फ़रीद की भावाकुलता बनी रहती है और उनकी अप्रतिम काव्य-पंक्तियों में उमड़-उमड़ पड़ती है। मिलन-लालसा और वियोग-व्यथा दोनों को ही यहाँ मानवीय प्रेम-प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त किया गया है, और कुछ इस प्रकार कि एक-एक शब्द टटका बना रहे।

पंजाबी भाषा के सूफ़ी काव्य के कुल तीन अवस्था-रूप रहे हैं। फ़रीद पहले को प्रतीकित करते हैं। इसमें शरीअ़त को ही सबसे पवित्र और महत्त्वपूर्ण माना गया। शरीअ़त ही चरम आध्यात्मिक अनुभूति का आधार-अवलम्ब थी। फ़रीद स्वयम् जीवन और आचरण की इसलामी पद्धति को, ईश्वर की निष्ठित एकलता को,और मानव की परस्पर भाईचारे की भावना को सदा ग्राह्य मानते हैं। सच तो, फ़रीद जितने समर्थक सूफ़ीवाद के हैं उतने ही इसलामी संस्कृति के। दूसरे अवस्था-रूप का काल शाह हुसैन का है। यह शरीअ़त के प्रति सहनशील तो हैं, पर भाव कम-अधिक उपेक्षा का ही है। इन्हें भारतीय चिन्तन और परम्परा के स्वर अधिक मनोनुकूल लगे। प्रायः ही यह 'कर्म और संसार' अर्थात् जन्म-मरण-चक्र की बात किया करते। शाह हुसैन गायन और नर्तन में ही लीन नहीं रहते, यथेच्छ पान भी करते, जिसमें कि भावोल्लास की उस स्थिति तक पहुँच सकें जहाँ अपने प्रीतम के साथ एकभाव हो रहें। तीसरा अवस्था-काल बुल्लेःशाह का है। बुल्लेःशाह ही वस्तुतः अपनी काव्य-चिन्तना में सूफ़ीवाद के शिरोबिन्दु तक पहुँच सके। इन्होंने शरीअ़त को मान्यता नहीं दी, उलटे उपहास्य समझा। स्वर्ग और नरक से भी लेना-देना नहीं रखा। सचमुच तो, इन्होंने इसलाम को ही नकारा। इन्होंने तो अपने अन्तःस्थ दिव्यदर्श को भावानन्द और प्रेमोल्लास की विभोरता में प्राप्त

किया। बुल्लेःशाह तो अपने को वेदान्त के सनातन चिन्तन के साथ एकतान किये रहे। ईश्वर का दर्शन इन्होंने सृष्टि के कण-कण में और स्वयम् अपने भी भीतर-बाहर सर्वत्र पाया। राम, कृष्ण और मुहम्मद तीनों ही नाम इनके होंठों पर बसे रहते। धार्मिक भेदभाव इन्हें स्वीकार ही न थे। इन्हें तो कविरूप में देखें, चाहे आध्यात्मिक उपलब्धि की दृष्टि से, सूफ़ी कवियों में सर्वोच्च यही ठहरते हैं।

फ़रीद के काव्य का थोड़े विस्तार से अध्ययन करें, उससे पहले दो शब्द 'शरीअत' के बारे में कहना उचित होगा। यह तो कहा जा चुका है कि इसलाम में 'शरीअत' को जीवन की आचार-संहिता माना जाता है। जीवन के सभी पक्ष—धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक—इसके अन्तर्गत आते हैं। धार्मिक स्तर पर एक मुसलमान के लिए नितान्त आवश्यक है कि अल्लाह, फ़रिश्तों, क़ुरान, पैग़म्बर, मृतकों के क़ब्र में जी उठने, और 'अन्तिम न्याय के दिन' पर उसकी अडिग आस्था हो। इसी प्रकार कलमे, पाँच वक़्त की नमाज़, रोज़े, हज्ज, और ख़ैरात में आय का दसवाँ हिस्सा देने पर भी हो। सामाजिक जीवन में मुसलमान को विनम्रता, सन्तोष, उदारता, न्याय-भावना और शुद्धता आदि नैतिक नियमों का पालन करना चाहिए। ईश्वर के एकत्व और 'मनुष्य सब भाई-भाई' में भी पूर्ण विश्वास होना आवश्यक है।

फ़रीद का 'शरीअत' में सचमुच अगाध विश्वास था। अपने जीवन को उन्होंने तदनुरूप ही ढालने का प्रयत्न किया। अपने शिष्यों और अनुयायियों से भी उनका यही आग्रह रहा कि 'शरीअत' का नियमित पालन करें। इसे वे आध्यात्मिक जीवन-यापन के लिए अत्यन्त आवश्यक मानते थे। परवर्ती सूफ़ियों से भिन्न, फ़रीद को 'शरीअत' और चरम आध्यात्मिकता में कोई अन्तर्विरोध नहीं जान पड़ा। यद्यपि मंसूर-अल हल्लाज के आत्मोत्सर्ग से वह सारा तत्कालीन तनाव प्रकाश में आ गया, जो 'शरीअत' पर आग्रही रूढ़िवादियों और एक धर्मप्राण सूफ़ी की तुष्टिकर अनुभूतियों में चला आता था; फिर भी फ़रीद यही माना किये कि 'शरीअत' और आध्यात्मिक ज्ञान दोनों हैं एक ही लोक के दो छोर। एक यात्रा का आदि बिन्दु था, दूसरा चरम लक्ष्य। 'तरीक़त' यदि प्रेम का मार्ग थी, तो 'शरीअत' शुद्ध जीवन-आचरण का। दूसरे शब्दों में कहें तो, फ़रीद ने मानो अनुभवातीत, अन्तर्व्याप्त और सर्वेश्वरता—तीनों में एक संगति बैठायी है। उन्होंने ईश्वर का दर्शन मनुष्य में भी पाया और प्रकृति में भी, और अनुभव से समझा कि प्रीतम प्रभु के साथ एकात्मता की साधना में ईश्वर-प्रेम और 'शरीअत' का पालन परस्पर पूरक बैठते हैं। चिश्ती सिलसिले के प्रवर्तक ख्वाजा मोइन्-उद्-दीन चिश्ती की इस टिप्पणी के वे पूर्ण समर्थक थे कि "आचरण की शुद्धता के द्वारा 'शरीअत' के पालन में सफलता प्राप्त कर लेने पर, मनुष्य अपने आप 'तरीक़त' की अवस्था ग्रहण कर चलता है और फिर आगे 'मारिफ़त' और 'हक़ीक़त' की।"

फ़रीद के काव्य का अध्ययन उन के 4 गीतों और 112 दोहों तक ही सीमित रखेंगे। दोनों इतने-इतने ही 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में सम्मिलित किये गये हैं। हैं ये सब मुलतानी पंजाबी में। अंग्रेज़ी में इनके अनुवाद का प्रयत्न किया गया। पर अर्थ-छटाओं के सूक्ष्म भेदों के कारण, एक भाषा से दूसरी में कविता को सम्पूर्णता के साथ ला पाना सम्भव नहीं होता। हर भाषा की कुछ अपनी विशेषता रहती है जो सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध होती है। सच तो उसके बिम्ब और प्रतीक तक लोक-साहित्य, पुराकथाओं और इतिहास से जुड़े हुए रहते हैं; और ये स्वभावत: उसे एक अपना रंग दिये हुए होते हैं। बात इतनी वास्तव में निरी शब्दों के अर्थ-भाव की नहीं हुआ करती, न ही इनके सम्प्रेषण की। बात होती है एक पहुँचे हुए रहस्यवादी की हृदयस्पन्दना और भावोद्गार की, और उस अन्तरस्थ भावाशय की जिसे अपनी वाचा के स्वर-संगीत द्वारा वह प्रदान करता होता है। अत: यह स्वाभाविक है कि इन रचनाओं का प्रभाव, किसी अन्य भाषा के अनुवाद के माध्यम से पढ़नेवालों की अपेक्षा, उन पर अधिक एवम् गहरा होगा जो मूल पंजाबी के ज्ञाता हैं। फिर भी मूल रचनाओं में हिलोरें लेतीं बौद्धिक और रहस्यवादी प्राणधाराओं का आभास देने का प्रयत्न अनुवाद में भी करेंगे।

जैसा कहा जा चुका है ऊपर, फ़रीद यद्यपि सूफ़ी थे और आध्यात्मिक अनुभूतियों के निरन्तर अन्वेषी भी, थे वे निर्मिति इसलाम की ही। ईश्वर की कल्पना यहाँ एक सर्वोपरि-सर्वोच्च की है, जो सर्वशक्तिमान् है, सबका स्रष्टा, संहर्ता और संरक्षक है, और अपार और अनन्त है। परम दयामय है वह, पर न्यायवान् भी। 'निर्णय का दिवस' आने पर, जो भले और सदाचारी हैं वे स्वर्ग के सुख भोग करेंगे, और जो पापी हैं, उन्हें नरक के दण्ड मिलेंगे। फ़रीद ने ईश्वर और मानव के सम्बन्ध का वर्णन, राग आसा में बँधे, अपने इस भक्तिगीत में किया है:

दिलहु मुहबतिं जिन्ह सेई सचिआ॥
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ॥ 1॥

रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के॥
विसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥ 2॥

आपि लीए लड़ि लाइ दरि दरवेस से॥
तिन धनु जणेदी माउ आए सफलु से॥ 3॥

परवदगार अपार अगम बेअंत तू॥
जिना पछाता सचु चुंमा पैर मूं॥ 4॥

तेरी पनह खुदाई तू बखसंदगी॥
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी॥ 5॥

यहाँ फ़रीद ईश्वर का वर्णन उस 'परम एक' के रूप में करते हैं जो सर्वव्यापी और बोधातीत है। अपनी सृष्टि का वही पालनकर्ता है, वही संरक्षक; किन्तु है अगम्य और असीम। फ़रीद तो उनके भी चरण ही चूमेगा जिन्हें उसका प्रकाश प्राप्त हुआ। सच्चे भक्त-प्रेमी तो ईश्वर के हैं ही वे जो उस पर अपनी सम्पूर्णता के साथ निछावर हैं : जिनमें असंगति है, जिनकी कथनी और करनी में भेद है, वे नहीं। आगे कहते हैं फ़रीद कि ईश्वर का दर्शन उन्हें ही प्राप्त होता है जो उसके 'इश्क़' में डूबे रहते हैं, अन्य सब तो धरती पर भार ही है। सच्चा 'दरवेश' भी वही है जिस पर ईश्वर का अनुग्रह हो और जो उस 'इश्क़' की राह पर चले। वही एक तो जैसे जीवन का उद्देश्य भी पूरा करता है। गीत के अन्त में फ़रीद ईश्वर को ही सारी दया-कृपा के दाता के रूप में गुहार-गुहारकर अनुनय करते हैं कि इन्हें तो वह बस अपनी भक्ति का ही वरदान है।

सर्वेश्वरवादी होने के नाते यद्यपि फ़रीद मानते थे कि ईश्वर अपने को सृष्टि के कण-कण में व्यक्त करता है, किन्तु जंगल-जंगल और धूलों-डगरों भटकने को वे फिर भी निरर्थक समझते थे, क्योंकि ईश्वर तो मनुष्य के अपने हृदय में भी बसा था।

फरीदा जंगलु जंगलु किआ भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ॥
वसी रबु हिआलीऐ जंगलु किआ ढूढेहि ॥ 19 ॥

यह श्लोक दो दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। फ़रीद ने यहाँ योगियों की भर्त्सना की है : कि वे ईश्वर-प्राप्ति के लिए घर-द्वार आदि सब-कुछ त्याग देते हैं और संन्यासी होकर कहीं एकान्त में जा रहते हैं। फ़रीद के विचार से संन्यास का सच्चा अर्थ था सांसारिक वस्तुओं और पापाचरण का परित्याग। मनुष्य को मनुष्यों में ही रहना चाहिए। वहीं रहते हुए वह ईश्वर के साथ एकत्व की साधना करे और, ईश्वर यदि औरों के भी हृदय में वास करता है, तब उसका वहीं दर्शन करने में सबकी सहायता करे।

फ़रीद के सलोकों में एक सलोक गुरु अर्जन देव का है। यहाँ फ़रीद को ही सम्बोधित करते हुए, ईश्वर के अस्तित्व को बड़ी विदग्धता के साथ उसी की सृष्टि में अनावृत किया गया है :

फरीदा खालकु खलक महि खलक वसै रब माहि ॥
मंदा किस नो आखीऐ जां तिसु बिनु कोई नाहि ॥ 75 ॥

फ़रीद प्रभु के प्रेम में स्वयम् डूबे हुए हैं। कभी जब आशंकाएँ उन्हें घेरती है तब वे उसकी सेवा-भक्ति के आग्रही हो उठते हैं और अपने निश्चय की दृढ़ता के लिए अपने से ही वृक्षों के जैसे धैर्य और सहन-शक्ति की माँग कर उठते हैं :

फरीदा साहिब दी करि चाकरी दिल दी लाहि भरांदि ।।
दरवेसां नो लोड़ीऐ रुखां दी जीरांदि ।। 60 ।।

जीवन का सारा ही माधुर्य जब विष में बदल रहे, उस समय भी फ़रीद की आँख उठेगी तो एक केवल ईश्वर की ही ओर, क्योंकि किसी और में उसे विश्वास की कहाँ :

देखु फरीदा जि थिआ सकर होई विसु ।।
सांईं बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु ।। 10 ।।

एक अन्य बड़े ही कोमल भाव और शब्द-रूप में प्रस्तुत किये गये सलोक में फ़रीद अपने प्रियतम प्रभु की तुलना पके खजूर और मधु के माधुर्य से करते हुए कहते हैं कि इस नपे-नपाये जीवन का बीतता हुआ एक-एक दिन इसमें बसे सुख और आनन्द को घटाता ही तो जाता है :

फ़रीदा रब खज़ूरी पकीआ माखिअ नई वहंनि ।।
जो जो वंञै डीहड़ा सो उमर हथ पवंनि ।। 89 ।।

इस सलोक का यह अर्थ भी हो सकता है कि जीवन तो स्वल्प ही रहता है, अतः मनुष्य को चाहिए कि प्रभु के ध्यान-चिन्तन से उपलभ्य माधुर्य के आस्वादन के लिए मिले दिनों का अधिकतम सदुपयोग करे। इसी माधुर्य की तुलना फ़रीद ने मधु और पके खजूर के माधुर्य से की। परोक्ष रूप से वे उस अनमोल आनन्द की तुलना थोथे और क्षणिक सांसारिक सुखों से कर रहे थे; और, जैसा कि पिछले सलोक में कहा, इनकी तो प्रवृत्ति ही रहती है कि विषमय हो उठें।

फ़रीद को इस बात का बोध है कि मनुष्य शान्ति भी खोजता है और यह भी चाहता है कि दुनिया उसकी हुई रहे। इस नैतिक मनीषी का परामर्श होता है कि शान्ति लाभ करने के लिए हृदय की शुद्धता अपेक्षित है, और जहाँ भीतर निर्मलता आयी कि ईश्वर के साथ एकत्व अपने ही सध चलता है। फिर तो, अर्थात् इसके सधते, सारा ही संसार तोउसका हो रहेगा :

आपुसवारहि मै मिलहि मै मिलिआ सुखु होइ ।।
फ़रीदा जे तू मेरा होइ रहहि सभु जगु तेरा होइ ।। 95 ।।

फ़रीद ने परमात्मा को यहाँ 'मालिक' के रूप में उकेरा है। एक उसी की 'मर्जी' यहाँ सब पर चलेगी। चेतन प्राणी पर भी, और जीवहीन वस्तुओं पर भी। उसकी नियत की हुई सीमाओं को लाँघा नहीं जा सकता। यहाँ नदी की धारा को सम्बोधन करते हुए कहते हैं फ़रीद :

कंधी वहण न ढाहि तउ भी लेखा देवणा ।।
जिधरि रब रजाइ वहणु तिदाऊ गंउ करे ।। 84 ।।

प्रभु-चिन्तन के माधुर्य विषयक फ़रीद की अपनी अनुभूति को भी देखें। फ़रीद ने इसका स्वाद पाया है, इसे जाना है, और रोम-रोम में इसे अनुभव किया है। उनके तो अन्तर से धाराएँ फूटती रही हैं काव्य-माधुर्य की :

फरीदा सकर खंड़ु निवात गुड़ु माखिउ मांझा दुधु ।।
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ।। 27 ।।

निस्सन्देह फ़रीद ने स्वयम् अपने भी इस माधुर्य को चखा था। इसीलिए तो 'गंज-ए-शकर' नाम भी हुआ उनका।

हम देखेंगे कि ऊपर आयी फ़रीद की सभी रचनाओं में एक गम्भीर ईश्वरीय चेतना सर्वत्र व्याप्त है। ईश्वर ही इस समूचे संसार के सर्वसमर्थ चालक-नियामक के रूप में सब कहीं दीख पड़ता है। कहीं एक भी ऐसी सजीव या निर्जीव वस्तु नहीं होती जहाँ उसकी विद्यमानता प्रत्यक्ष न हो। दरवेशों को फ़रीद का परामर्श होता है कि प्राणिमात्र के प्रति प्रेम का भाव रखें, और सामान्य जन को यह सुझाव कि अपने तन-मन का परिष्करण करें जिसमें शान्ति लाभ हो और ऐसा लग आये कि वह भी ईश्वर का अपना ही है। एक रचना में कहते हैं फ़रीद : 'धिक्कार है जीवन पर यदि ईश्वर से भिन्न किसी और पर निर्भर करना पड़े!' ईश्वर की इच्छा के प्रति ऐसा सम्पूर्ण समर्पण फ़रीद के गीतों की महत्त्वपूर्ण विषय-वस्तुओं में से है।

ईश्वर की इस एकनिष्ठ भक्ति से भिन्न, जब हम ईश्वर-प्रार्थना का विषय लेते हैं तो फ़रीद को मुसलमानों से आग्रह करता हुआ पाते हैं कि वे प्रतिदिन 'शरीअ़त' के नियमानुसार पाँचों वक़्त की नमाज़ अदा किया करें। यहाँ फ़रीद इतने कठोर अनुशासक बन उठते हैं कि नमाज़ के वक्त पर यदि कोई न आये या पढ़ने से पहले 'वुज़ू [हाथ-पैर-मुंह धोना] न करे तो उसे 'कुत्ता' तक कह उठते। इस सीमा तक कड़े हो जाते वे कि नमाज़ अदा करते में किसी का सिर खुदा के आगे झुकना रह जाये तब कहते कि ऐसे सिर को तो काटकर देग़ची तले जलते इंधन में डाल देना चाहिए। निम्न तीन छन्दों को छोड़, कोई उदाहरण नहीं मिलता जिससे लगे कि फ़रीद सचमुच इतने मताग्रही और कड़े नियन्ता थे :

फरीदा बेनिवाजा कुतिआ एह न भली रीति ।।
कबही चलि न आइआ पंजे वखत मसीति ।। 70 ।।

उठु फरीदा उई साजि सुबह निवाज गुजारि ।।
जो सिरू सांई ना निवै सो सिरु कपि उतारि ।। 71 ।।

जो सिरु साइं ना निवै सो सिरु कीजै कांई ।।
कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ ।। 72 ।।

इसलाम की मान्यता है कि फ़रिश्ते भी होते हैं, और ये खुदा के इशारे पर अपना-अपना कर्तव्य पूरा करते हैं। इनके अतिरिक्त, एक शैतान भी रहता है। यही शैतान मनुष्य को बुराइयों और पाप कर्मों की ओर प्रवृत्त करता है। फ़रीद के निम्न सलोक में शैतान की इन्हीं हरकतों की ओर संकेत हुआ है :

फरीदा कूकेदिआ चांगेदिआ मती देदिआ नित ।।
जो सैतानि वंञा वांइआ से कित फेरहि चित ।। 15 ।।

पर इन सब भले और दुष्ट फ़रिश्तों में से, फ़रीद ने उल्लेख प्राय: मृत्यु के फ़रिश्ते का ही किया है। मृत्यु के विषय को ही देखा भी विस्तार से गया है। एक झाँकी उन आत्माओं की भी आयी है जो क़ब्रों में कभी से 'रोज़े जज़ा' के इन्तज़ार में हैं कि वे जी उठें और अपने-अपने पुरस्कार अथवा दण्ड के अनुसार बहिश्त या दोज़ख़ भेज दी जायें।

मृत्यु वास्तव में फ़रीद की कविताओं का एक प्रधान विषय है। जीवन का तो यह एक अटल नियम ही है कि एक दिन मनुष्य का अस्तित्व ही शेष न रह जाये। मृत्यु सदा और सर्वत्र वर्तमान रहती है। उसकी उपेक्षा करना सम्भव नहीं होता। मृत्यु के दिन को भी इधर से उधर नहीं किया जा सकता। जैसे ही नियत दिन आता है कि मृत्यु इस प्रकार झपट्टा मारती है मानो कोई हिंस्र पक्षी हो और प्राणों को पंजों में ले उड़े। फ़रीद यहाँ आत्मा के लिए क्रौंच पक्षी की उपमा देते हुए कहते हैं कि पक्षी बेचारा, आसन्न मृत्यु से अनवगत, नदी किनारे आनन्द मनाता होता है, तभी बाज़ के रूप में मृत्यु औचक झपटती है और उस पक्षी का सारा खेल जहाँ का तहाँ समाप्त हो जाता है :

फरीदा दरीआवै कंन्हे बगुला बैठा केल करे।
केल करंदे हंझनो अचिंते बाज पए।।
बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं ।।
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं ।। 99 ।।

यही मृत्यु सम्बन्धी अकथ्यता और जीवन सम्बन्धी निश्चित नश्वरता, दो विषय हैं जो पल-घड़ी फ़रीद की चेतना को घेर-घेर आते हैं। एक कविता में वे जीवन की उपमा नदी किनारे के पेड़ से और मिट्टी के अनपके बरतन में भरे हुए

पानी से देते हुए कहते हैं कि दोनों ही का टिकना तो अनिश्चित काल का है :

कंढी उतै रुखड़ा किचरकु बनै धीरु ॥
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु ॥ 96 ॥

फ़रीद ने एक अत्यन्त स्पर्शी रचना में सशक्त बिम्बों द्वारा मृत्यु का चित्रण दूल्हे के रूप में किया है। दूल्हा आता है और अस्थियाँ बिदारकर बहू (आत्मा) को लिये हुए चल देता है। पर जाने का रास्ता नरक पर बने हुए पुल से है जो सिर के बाल से पतला होता है और तलवार की धार से पैना। क़ुरान के अनुसार, इस पुल से ही गिरने पर कोई दोज़ख़ की आग में पहुँचता है और कोई पार लगने पर अचल शान्ति प्राप्त करता है तथा स्वर्गलोक के अनन्त सुख-भोग।

'गुरु ग्रन्थ साहिब' में आया फ़रीद का पहला ही सलोक है जहाँ कवि ने आत्मा की मृत्योपरान्त यात्रा का बड़ी योग्यतापूर्वक चित्रण किया है :

जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ ॥
मलकु जि कंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कू कड़काइ ॥
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ ॥
जिंदु वहुटी मरणु वरु लै जासी परणाइ ॥
आपण हथी जोलि कै कै गलि लगै धाइ ॥
वालहु निकी पुरसलात कंनी न सुणी आइ ॥
फरीदा किड़ी पवंदीई खड़ा न आपु मुहाइ ॥ 1 ॥

कितना भयानक चित्रण है मनुष्य की असहायता का : कि नियत दिन मृत्यु आकर आगे खड़ी हो और इसे इस दिन का पता ही न हो! आया भी होता है फ़रिश्ता मृत्यु का स्वयम्। मनुष्य ने इसके बारे में सुना तो होता है, पर किये आता है भूला ही रहने की। औचक यह दारुण फ़रिश्ता प्रकट पड़ता है और हाड़-हाड़ को भेदकर काया से जीव को निकाल ले जाता है। आया भी होता है तो जैसे दूल्हे के भाव में : ढीठ-निरंकुश-निर्भय, हर बात में बस जैसे इसी की चलनी हो। और देखते-देखते बहू (जीव) को अधिगत करके चल देता है। फ़रीद का कहना है यह 'ऊपर' का ही आदेश रहता है। इसका विरोध करना बेमानी है। इससे बचाव ही नहीं रहता। अन्त जब आये तो जीवन से आप ही बिदा माँग लेनी चाहिए। मन के सारे भाव, आवेग-संवेग और राग-विराग चुक चुके होते हैं। आगे की यात्रा निपट अकेले पार करनी होती है। साथ के लिए कोई होता ही नहीं। इस आगे की यात्रा में ही जीव को नरक का पुल पार करना होता है : पीछे से आतीं चीख़-पुकारों तक को अनसुना करते हुए। इस चित्रण का अभिप्राय इतना ही है कि मनुष्य के अन्तर

में भय और संत्रास का भाव जग आये। किन्तु फ़रीद का हृदय तो दया और करुणा से ओतप्रोत है। चित्रण से आशय इतना ही है कि मानव को आगे का भी ध्यान रहे और जीवन ईश्वरमुखी बन सके। तभी मृत्यु के उपरान्त यथार्थ शान्ति और सुख-भोग भी लाभ कर सकेगा जीव।

सूही राग में बंधी निम्न पंक्तियों में फ़रीद ने फिर नरक के पुल का उल्लेख किया है जो सँकरा ही नहीं, दोधारी तलवार जैसा पैना भी है :

वाट हमारी खरी उडीणी ।।
खंनिअहु तिखी बहुतु पिईणी ।।
उसु ऊपरि है मारगु मेरा ।।
सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा ।। 4 ।।

इस कविता में फ़रीद, यात्रा की जोखिमों का वर्णन करके सभी को सचेत करते हैं कि मृत्यु के आगे की यात्रा के लिए चिन्ता और चेष्टापूर्वक अपनी तैयारी कर।

कैसे क्या की जाती है यह तैयारी ? राग आसा में फ़रीद ने एक ही रूप बताया है : अपने को ईश्वर के साथ सम्पृक्त कर लेना और इस सचाई को जाने रखना कि यह देह एक दिन धूल होनी है और मृत्यु के बाद लौटती नहीं :

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे ।।
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे ।। 1 ।।
आजु मिलावा सेख फ़रीद टाकिम
कूंजड़ीया मनहु मचिंदड़ीआ ।। 1 ।।
जे जाणा मरि जाईऐ घुमि न आईऐ ।।
झूठी दुनीआ लगि न आपु वञाईऐ ।। 2 ।।

एक अन्य सलोक में फ़रीद ने मनुष्य की समूची जीवन-यात्रा का वर्णन किया है। कैसी-कैसी आशाएं बाँधे हुए मनुष्य आता है, कैसा बिताता है जीवन अपना, फिर आ जाता है अचक मृत्यु का दूत, और भाई-बन्धुओं के ही कन्धों पर सबके देखते विदा हो जाता है। फ़रीद इस सलोक में उसके तमाम कृत्यों को एक शृंखला में जोड़ते हैं। जीवन में जो भी उसने भला किया वही केवल भगवान् के सम्मुख सहायक बनता है :

साढे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अंनि ।।
आइओ बन्दा दुनी विचि वति आसूणी बंनि ।।
मलकल मउत जां आवसी सभ दरवाजे भंनि ।।
तिन्हा पिआरिआ भाईआं अगै दिता बंनि ।।

वेखहु बंदा चलिआ चहु जणिआ दै कंन्हि ।।
फरीदा अमल जि कीते दुनी विचि दरगह आए कंमि ।। 100

मृत्यु की अनिवार्यता पर तो बार-बार बल दिया गया है :

एनी लोइणी देखदिआ केती चलि गई ।।
फरीदा लोकां आपो आपणी मै आपणी पई ।। 94

आगे फिर :

सेख हैयाती जगि न कोई थिरु रहिआ ।।
जिसु आसणि हम बैठे केते बैसि गइआ ।। 5

फ़रीद का इतना ध्यान मृत्यु ही नहीं घेरे आयीं, क़ब्र में बीतता युग का युग और फिर नरक की लपटें भी घेरा कीं। सच तो, उन कीड़ों तक के ध्यान से अपने को मुक्त नहीं रख सके फ़रीद, जो क़ब्र में हाड़-मांस को कुतरा करते हैं :

फरीदा इट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि ।।
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि ।। 67

निम्न सलोक में फ़रीद ने नरक की ज्वालाओं और उनमें झुलसते पापियों की करुण चीख़-पुकारों का बड़ा सजीव अंकन किया है :

फरीदा मउतै दा बंना एवै दिसै जिउ दरीआवै ढाहा ।।
अगै दोजक तपिआ सुणीऐ हूल पवै काहाहा ।।
इकना नो सभ सोझी आई इकि फिरदे बेपरवाहा ।।
अमल जि कीतिआ दुनी विचि से दरगह ओगाहा ।। 98

क़ब्र में बरसों-बरसों की प्रतीक्षा और नरक में अपने पापों के दण्ड : ये सभी भगवान् के न्याय से जुड़े-बँधे हैं, सभी हमारे कृत-कर्मों का फल होते हैं। इनसे त्राण का एकमात्र उपाय है : भगवद् भजन। इसे गुनना बहुत आवश्यक है :

फ़रीदा महल निसखण रहि गए वासा आइया तलि ।।
गोरां से निमाणीआ बहसनि रुहां मलि ।।
आखीं सेखां बंदगी चलणु अजु कि कलि ।। 97

यहाँ छलकी आती हैं करुणा और व्यथा एक-एक मानव प्राणी के लिए ! और जो निर्बुद्धि है, उसे तो फ़रीद बड़े आकुल स्वर में चेताते हैं कि आगे क्या-क्या है और कैसे-क्या करके उससे रक्षा सम्भव है।

मनुष्य की जीवन-यात्रा का चित्रण फ़रीद ने कुएँ में लटकी डोर और घट के ऊपर को खींचे जाने की सीधी-सरल उपमा के द्वारा किया है। सुन्दर घट ही मानव देह है और यह लम्बी डोर, साँसों की डोर है, जो प्राणों को सँभाले आती है। मृत्यु का दूत आता है तब यही डोर टूट रहती है और वह रंग-बिरंगा घट टूक-टूक हो जाता है। फ़रीद की इस विषय पर दो रचनाएँ हैं। एक में मृत्युदूत अतिथि या दूल्हा बनकर आता है, और इस प्रकार जीवन और मृत्यु के अन्त-परिणय पर बल दिया गया है। दूसरी में, डोर के सहसा टूटने पर उन सभी के जीवन का अन्त हो जाता है जिन्होंने अपने प्राणों के वरदान का सदुपयोग नहीं किया। यह तक इन्होंने भुला दिया कि प्रीतम के साथ एकत्व लाभ करने के लिए जीवन तो एक ही बार मिलता है :

फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टुटी नागर लजु ॥
अजराईलु फरेसता कै घरि नाठी अजु ॥ 68

और

फरीदा भंनी घड़ी सवंनवी टटी नागर लजु ॥
जो सजण भुइ भारु थे से किउ आवहि अजु ॥ 69

सच तो प्रश्न चिरन्तन है यह : धरती पर आने का उद्देश्य क्या होता है ? डोर टूटे और घट के टुकड़े-टुकड़े हों उससे पहले मनुष्य को बुद्धि आ जानी चाहिए कि जीवन कितने महत्त्व का होता है। और तब उसे लगकर कुछ ऐसी अर्जना कर लेनी चाहिए जो आगे सहायक बने।

और वे जो अपने प्रभु को ही बिसार बैठें, उनके लिए इस जीवन में तो कष्ट ही कष्ट हैं; अगले में तो स्थान तक न होगा :

फरीदा तिना मुख डरावणे जिना बिसारिओनु नाउ ॥
ऐथे दुख घणेरिआ अगै ठउर न ठाउ ॥ 106

किन्तु जिन का हृदय शुद्ध है, लोभ-लालसा और अभिमान जिन्हें छूते नहीं, और धन का मद अथवा निराशा का पंक भी जिनसे दूर ही रहा, उन्हें नरक की यातना स्पर्श भी नहीं करेगी :

फरीदा मनु मैदानु करि टोए टिबे लाहि ॥
अगै मूलि न आवसी दोजक संदी भाहि ॥ 74

'शरीअत' के अनुसार क़यामत के दिन दुनिया का अन्त होगा। धरती पर महाभयानक भूचाल आयेगा और सभी कुछ उसमें नष्ट हो रहेगा। क़ब्रों में गड़े मुरदे तक काँप उठेंगे, क्योंकि ऐसी तबाही का दिन किसी ने कभी देखा ही न था।

तभी एक बिगुल की आवाज़ होगी और तमाम मुरदे जी उठेंगे। एक-एक की फिर पुकार होगी कि अपने किये-धरे का हिसाब दे।

क़यामत के दिन के प्रति फ़रीद ने जिन पंक्तियों द्वारा ध्यान आकर्षित किया है वहाँ एक सशक्त रूपक का प्रयोग हुआ है। इसमें इस संसार को एक विशाल झील से उपमित किया है। अनगिनत पक्षी अपने घोंसले बनाने आते हैं, पर एक-एक कर सब ही उड़ जाते हैं। रह जाते हैं वहाँ कमल के दो फूल। ये भी एक दिन मुरझा जायेंगे। और तब अन्त में झील (संसार) भी सूख रहेगी और कुछ भी वहाँ बचा न होगा :

चलि चलि गईआं पंखीआ जिनी वसाए तल ॥
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल ॥ 66

फिर आयेगा 'विचार या (क़यामत) का दिन' और एक भारी-भरकम खाते को खोला जायेगा। एक-एक जीव को अध्यक्ष के सामने आकर पल-पल का हिसाब देना होगा कि दिये गये समय का यात्रा में कैसे और क्या उपयोग किया :

फरीदा चारि गवाइआ हंढि कै चारि गवाइया संमि ॥
लेखा रबु मगेसीआ तू आंहो केहे कंमि ॥ 38

इन पंक्तियों में फ़रीद ने बड़े करुण भाव में अपने दुःख और शोक को प्रकट किया है कि हाथ के समय को मनुष्य ने किस बेतरह खोया।

पापकर्म और उसके लिए निर्धारित दण्ड की बात सभी धर्मों में आयी है। 'शरीअत' में इस पर विशेष बल दिया गया है। फ़रीद की दृष्टि में पापकर्म सांसारिक जीवन की एक वास्तविकता बन गये हैं। अनेक-अनेक रूप और प्रकार भी रहते हैं इनके। यही बात कि भोग्य दण्डों की कठोरता में भी उन्होंने एक विविधता दरशायी। जो लोग सांसारिक सुख-भोग में लिप्त रहते हैं उन्हें मृत्यु के बाद दण्ड-भोग के लिए चुना ही जायेगा :

फरीदा इकना आटा अगला इकना नाही लोणु ॥
अगै गए सिञापसनि चोटां खासी कउणु ॥ 44

आगे कहते हैं :

फ़रीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ॥
जिना खाधी चोपड़ी घणे सहनिगे दुख ॥ 28

फ़रीद अपने आसपास के देहाती जीवन से दो उपमाएँ लेकर उनके द्वारा

सुस्पष्ट करते हैं कि पाप-कर्मियों के लिए कितना-कितना दण्ड उनकी प्रतीक्षा करता होता है :

फरीदा दरि दरवाजै जाइ कै किउ डिठो घीड़आलु ॥
एहु निदोसां मारीऐ हम दोसां दा किआ हालु ॥ 39

और फिर

फरीदा वेखु कपाहै जि थीआ जि सिरि थीआ तिलाह ॥
कमादै अरु कागदै कुंने कोइलिआह ॥
मंदे अमल करंदिआ एह सजाई तिनाह ॥ 79

ऊपर की दोनों रचनाओं में फ़रीद ने ध्यान उस दण्ड पर केन्द्रित किया है जो निरपराध वस्तुओं को बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के सहन करना पड़ता है। प्रत्यक्ष ही तब, जो सचमुच दोषी हैं उन्हें तो कितना-कितना अधिक दण्ड मिलना चाहिए ! फ़रीद यहाँ सब कुछ देखते और समझते हुए क्रमशः उसी दण्ड के परिमाण की कल्पना में रत हैं जो सचमुच के अपराधियों को मिलना चाहिए। अवश्य, वस्तुतः उनका ध्यान बुरे कामों की ओर है : इस उद्देश्य से कि मनुष्य के मन में भगवान् का भय इतना घर कर जाये कि जीवन ही सुधर चले।

ऐसा देखने में आयेगा कि फ़रीद पापकर्मियों को नरक में मिलनेवाले विभिन्न दण्डों की बात तो बार-बार उठाते हैं, स्वर्ग के सुखों का नाम तक नहीं लेते। बुराइयों के लिए वे फटकारते हैं, ताड़ते हैं; किन्तु स्वर्ग के आनन्द का कभी मन छूने के लिए भी संकेत नहीं करते। सूफ़ी जो ठहरे ! उनका तो दृष्टि-लक्ष्य ही जो प्रीतम का 'वस्ल' प्राप्त करना था ! स्वर्ग और जीवन-सुखों के पुनर्भोग के लिए यहाँ स्थान न था, भले ही कितनी भी महिमा उसकी क्यों न हो। सच तो, बुराई की भर्त्सना ही इसलिए की जाती कि वह निर्मल-विशुद्ध जीवन के मार्ग में बाधक बनती। और यह विशुद्ध जीवन ही रहस्यवादी साधना की दिशा में प्राथमिक पग होता। रहस्यवादी तो निर्वाण का साधक हुआ करता है। यहाँ हृदय में निहित प्रकाश की सूक्ष्म किरण इस देदीप्यमान सूर्य में घुल रहना चाहती है जो निखिल प्रकाश का उद्गम है। यहाँ सुख भी और दुःख है, सभी अस्तित्वमुक्त हो जाता और जीव अपनी अभिज्ञा खोकर उस परम निखिल परमात्मा में लय हो जाता है।

फ़रीद ने सामाजिक सद्गुणों से युक्त आचरण को, जो 'शरीअत' का एक अभिन्न अंग है, अपनी रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया है। अपनी अप्रतिम शैली में इन्होंने दया, क्षमा, विनय और सहिष्णुता आदि अनेक सामाजिक गुणों का बखान किया है। वास्तव में तो ये गुण ही जीवन को मधुर ओर सारवान् बनाते हैं इनके फलस्वरूप मनुष्य अपने समाज में ही सर्वप्रिय नहीं बन उठता, बल्कि जैसा क़ुरान

में कहा गया, ईश्वर भी ऐसों को मित्रवत् मानने लगता है ।

एक सामान्य-से, किन्तु मार्मिक, द्विपंक्तिक में फ़रीद ने अपने अनिष्टकारी के प्रति भी हित-साधन की ही भावना रखने पर बल दिया है। इनका तो कहना है कि इससे सांसरिक वैभव की भी प्राप्ति होगी :

फरीदा बुरे दा भला करि गुसा मंनि न हढाइ ॥
देही रोगु न लगई पलै सभु किछु पाइ ॥ 78

इन पंक्तियों में जीवन का एक पूरा दर्शन समाया हुआ है । जो व्यक्ति वस्तुतः सन्त हो, वही इनके भाव को आचरण का रूप दे सकेगा। अनिष्ट के बदले भी हित की ही सोचें, इसके लिए जैसी मनोवृत्ति अपेक्षित है वह दुर्लभ रहती है । क्रोध को हृदय में से निकाल ही देने का परोक्ष रूप में अर्थ होगा कि वहाँ प्रेम-भाव का निवास है । ऐसा यदि कोई वास्तव में कर सके, तो उसके समस्त कष्टों का अन्त हो रहे और जीवन में सभी कुछ उसे प्राप्त हो जाये । फ़रीद निस्सन्देह अपने सीधे-सरल ढंग से गूढ़ से गूढ़ सिद्धान्त को भी मन में बैठा देते हैं । यही जैसे कि यातनाओं से किस प्रकार पार लेते हुए आन्तरिक शान्ति लाभ की जाये ! और कैसी विनम्रता भी सिखाते हैं वे ! यहाँ 'दूसरा गाल सामने कर देना' नहीं होता, यहाँ होता है मार बरसानेवालों के चरण चूमना !

फरीदा जो तै मारनि मुकीआँ तिना न मारि घुंमि ॥
आपनड़ै घरि जाईऐ पैर तिनां दे चुमि ॥ 7

पर फ़रीद इससे भी आगे जाते है । उनका कहना है कि मनुष्य अपने लिए घास की स्थिति का वरण करे, जिसमें कि उसे कोई भी रौंदता हुआ चला जाये। एक सच्चे तपस्वी होने के नाते उनकी मान्यता है कि भगवान् के दरबार में प्रवेश पाने का यही मार्ग है :

फरीदा थीउ पवाही दभु ॥
जे सांई लोड़हि सभु ॥
इकु छिजहि बिआ लताड़ीअहि ॥
तां सांई दै दरि वाड़ीअहि ॥ 16

फ़रीद का तो कहना है कि धूल का भी न हम दुरुपयोग करें, न उसके प्रति दुर्व्यवहार ही । ठीक है कि वह निम्नतम वस्तु से भी गयी-बीती है; पर भूलना नही होगा कि भले जीवन-भर हम उसे रौंदते हैं, एक दिन वह भी हमारा स्थान ले ही सकती है :

फरीदा खाक न निंदीऐ खाकू जेडु न कोइ ।।
जीवदिआ पैरा तलै मुइया उपरि होई ।। 17

प्रेमभाव और लोभ-लालसा का संग-साथ चला नहीं करता। इस जीवन-सत्य को स्पष्ट करने के लिए फ़रीद ने झोंपड़ी और उसकी चूती छाजन की उपमा का प्रयोग किया है। कैसा होगा सचमुच प्रेम ही वह जो लोभी मन में निभे चले ? सच्चा तो नहीं ही होगा ! होगा भी चार ही दिन का ! जिस प्रकार चूती झोंपड़ी में टिकते नहीं बनता, उसी प्रकार लोभी मन में प्रेमभाव का भी मेल नहीं बैठता। फ़रीद ने जो उपमा यहाँ चुनी है, वह चित्रात्मक और प्रभावी ही नहीं, शब्द-कौशल के सहारे सुन्दर और स्पर्शी भी बन उठी है :

फरीदा जा लबु त नेहु किआ लबु त कूड़ा नेहु ।।
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ।। 18

इसी प्रकार सन्तोष-भावना की सीख देते हैं वे :

रुखी सुखी खाइ कै ठंडा पाणी पीउ ।।
फरीदा देखि पराई चोपड़ी ना तरसाए जीउ ।। 29

फ़रीद की दृष्टि में घी-चुपड़ी रोटी केवल ललचाने का ही विषय नहीं होती वह तो अनेक दुःख-दर्दों का मूल होती है। जो लोग जीवन के सुख-भोगों में पड़ जाते हैं उनका कष्ट और क्लेशों से बचाव नहीं होता। चुपड़ी रोटी यहाँ प्रतीक है ऐश्वर्य के जीवन का :

फरीदा रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ।।
बिना खादी चोपड़ी घणै सहनिगे दुख ।। 28

धैर्य के सद्गुण पर फ़रीद ने तीन सलोकों में कहा है। तीनों पर ही ध्यान देना अपेक्षित है :

सबर मंझ कमाण ए सबरू का नीहणो ।।
सबर संदा बाणु खालकु खता न करी ।। 115

और

सबर अंदरि साबरी तनु एवै जालेन्हि ।।
होनि नजीकि खुदाइ दे भेतु न किसै देनि ।। 116

साथ ही.

सबरू एहु सुआउ जे तूं बंदा दिड़ु करहि ।।
वधि थीवहि दरीआउ टुटि न थीवहि वाहड़ा ।। 117

भाषा की दृष्टि से फ़रीद के सबसे कठिन सलोक सम्भवतः ये ही तीन हैं। यहाँ मूल मुलतानी पंजाबी के साथ फ़ारसी शब्द भी पिरोये हुए हैं। उपमाएँ तक जीवन के विभिन्न पक्षों से चुनी गयी हैं। तीर-कमान और डोरी तथा महानदियों के पूर आये हैं, तो तपसी जन और कायदमन का संसार भी। पर अन्त लक्ष्य सबका एक ही रहता है ! धैर्य ! यही पूंजी लिये रहस्यवादी अपने अभीष्ट की साधना में जुटता है। धैर्य ही उसका प्रधान लक्षण होता है, धैर्य ही गुह्य मर्म, धैर्य ही प्रमुख उद्देश्य। सच में, यही तो महामन्त्र भी है जिसे मरणधर्मी मानव को हृदयंगम करना होता है। रहस्यवादी साधक का यात्रा-पथ दुर्गम ही नहीं, सुदीर्घ भी होता है। कितना धैर्य इसके लिए अपेक्षित हो आता है ! फ़रीद ने जिस बात पर यहाँ ज़ोर देना चाहा है वह यही कि साधक का यह धैर्यभाव अन्ततः निरर्थ नहीं जाता। भक्त को भगवान् अपना अंश बनाकर पुरस्कृत करेगा ही : 'मूल महानदी का अंश बनाकर, अपनी शाखा बनाकर नहीं !'

दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति का मार्ग नैतिकतापूर्ण जीवन-आचरण ही होता है। निस्सन्देह फ़रीद के लिए ध्यान, भाव-समाधि और प्रभु के साथ एकत्व ही जीवन का एकान्त उद्देश्य थे। किन्तु सूफ़ी-साधना द्वारा भी, ये तीनों उच्चतर होते जाते स्तर, प्राप्त नहीं किये जा सकते यदि जीवन को नैतिकता और सदाचार के द्वारा परिशुद्ध न कर लिया हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि यद्यपि फ़रीद का जीवन और उनके धार्मिक विश्वास 'शरीअ़त' पर आधारित थे, 'शरीअ़त' के ही कुछ पक्ष—जैसे क़ुरान, पैग़म्बर मुहम्मद, कलमा, ज़कात और हज्ज—उनकी रचनाओं में अनगाये रह गये। क्या हो सकता है कारण इसका ? कारण यही जान पड़ता है कि फ़रीद के जिन सलोकों को सुरक्षित रखने में गुरु नानक सहायक हुए, वे उनकी रचनाओं का एक लघु अंश ही हैं। इसे खेदजनक ही मानना होगा कि फ़रीद की, इनके अतिरिक्त कुछ उक्तियों और उनके जीवन से सम्बन्धित कुछ चमत्कारों के अप्रमाणित वर्णनों को छोड़, इन अरबी-फ़ारसी और उर्दू के भावोद्गारों को सुरक्षित रखने में उनका अनुयायी वर्ग सर्वथा चूका। अवश्य, फ़ारसी और उर्दू के कुछ चुटफुट द्विपंक्तिक हैं जो उनके बताये जाते हैं, पर इनकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है। इनका मुख्य विषय भी 'फ़रीद की ईश्वर के प्रति एकनिष्ठता और मानव मात्र के प्रति प्रेम और करुणा-भाव' है। विवश होकर, इसलिए, हमें उसी सामग्री के अध्ययन में लगना होगा जो 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में उपलब्ध है।

किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि फ़रीद एक अत्यन्त धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। वे इसलामी संस्कृति के प्रति समर्पित थे : सारी शिक्षणा ही उनकी क़ुरान पर आधारित थी। किशोरावस्था से ही समूची क़ुरान कण्टस्थ उन्हें थी और उसका नित्य पाठ उनकी चर्या का एक अनिवार्य अंग। अल्लाह के नाम का ध्यान-चिन्तन वे नित्य करते, और पाँचों वक़्त की नमाज़ भी बिना चूके अदा व रते। उनका तो आग्रह रहता कि सब मुसलमान नियमपूर्वक मसजिद जायें और क़ायदे के साथ सम्मिलित नमाज़-अदाई करें। यह बात, इसलिए महत्त्वहीन हो जाती है कि अपनी रचनाओं में क़ुरान और पैग़म्बर का नामोल्लेख उन्होंने किया या नहीं। उनकी तो 'ईमान' अर्थात् धर्म-विषयक समूची धारणा ही क़ुरान पर आधारित है, और क़ुरान को उन्होंने सदा ही 'अपौरुषेय' ग्रन्थ और मुहम्मद को 'पैग़म्बर' माना। 'कलमे' का उल्लेख न किया जाना भी इसी से महत्त्वहीन हो जाता है : जहाँ पैग़म्बर मुहम्मद में सच्ची आस्था है वहाँ कलमे की बात तो अपने ही आ जाती है ! ज़कात ? ज़कात का उल्लेख एक सलोक में अप्रत्यक्ष रूप से किया गया है। कहते हैं फ़रीद :

मति होदी होइ इआणा।
ताण होदे होइ निताणा।।
अणहोदे आपु वंडाए।
को ऐसा भगतु सदाए।। 128

बहुत सुन्दर सलोक है यह। एक सन्त के विशिष्ट लक्षणों की व्याख्या ! सच्चा सन्त सच ही अपनी क्षमता का प्रदर्शन नहीं करता, न ही कभी ज्ञान का अभिमान। बड़ी बात यह कि उसके पास नामचार को भी कुछ हो, तो औरों के साथ उसे बाँटकर ही ग्रहण करेगा, या सब का सब ही उन्हें दे देगा, यही होती ज़कात फ़रीद की !

और हज्ज का उल्लख तो शायद छूटा ही। क्योंकि रोज़े और हज्ज जैसी धर्म की बाहरी भूषाओं के प्रकाशन से तो फ़रीद सदा ही विरत रहे। वे तो बढ़ती वय के साथ अपनी अन्तरात्मा की लय में ही लीन होते गये। प्रीतम के साथ एक हो जाने की मनोकामना उत्कटतर ही नहीं हुई, अब तुष्टि और तृप्ति भी चाह उठी। इनकी तपोसाधना ने काय-पीड़न के उग्र से उग्र रूप ग्रहण किये, और समय तो जैसे था ही इसलिए कि उस पर उनके ध्यान-चिन्तन का एकाधिकार छाया रहे। प्रकट था कि ऐसे व्यक्ति, और उसकी ऐसी भावावस्था के लिए, हज्ज का-कुछ ही अर्थ होता। और रोज़े तो फ़रीद के जीवन में आये दिन ही रहे आये। इनकी तपोसाधना का ही अंग जो थे। किन्तु इन सबकी सम्मिलित भूमिका भी मात्र जितनी जो ही थी, चरम लक्ष्य तो उनका प्रीतम के साथ 'वस्ल' ही रहा !

इस सारे अध्ययन-विश्लेषण के अन्त में इतना ही और कहें कि फ़रीद का निरन्तर प्रयत्न रहा कि उनके शिष्यों और अनुयायियों की ईश्वर, पैग़म्बर और इस्लाम के विभिन्न सिद्धान्तों में आस्था उत्तरोत्तर दृढ़ हो। 'शरीअत' के प्रति अपने आग्रह भाव के सहारे उन्होंने सम्पर्क में आनेवालों की भी जीवन-पद्धति को उन्नत बनाया। फ़रीद ने अल्लाह और उसके इश्क़ के ही गीत नहीं गाये; विनय, सहिष्णुता, साधुता और सन्तोष वृत्ति जैसे सामाजिक सद्गुणों की महत्ता को भी सबके मन में बैठाया। फ़रीद एक महान् सन्त थे, विशिष्ट कवि, अत्यन्त धर्मनिष्ठ मुसलमान, और जन-जन के नितान्त 'अपने'।

5

तरीक़त का कवि फ़रीद

सूफ़ीवाद में चार अवस्थाओं का उल्लेख आता है जो ईश्वर के प्रति एकत्व की साधना में अग्रसर करती हैं। ये अवस्थाएँ हैं : 'शरीअत' (आचार-नियम पालन), 'तरीक़त' (सूफ़ी साधना) 'हक़ीक़त' (आत्मिक जाग्रति) और 'मारफ़त' (आत्म-ज्ञान)। इसलाम में सूफ़ीवाद का विकास कैसे हुआ, इसी की एक संक्षिप्त रूपरेखा यहाँ प्रस्तुत की गयी है। सच तो, इसका प्रारम्भ क़ुरान में ही अन्तर्भूत रहस्यमयता से हुआ। यह अनेकरूप रहस्यमयता है : क़ुरान का ईश्वर-प्रेरित होना, पैग़म्बर का बहिश्त तक आरोहण, यह धारणा कि ईश्वर अनन्त और अकथनीय है, मुहम्मद के ही कुछ साथियों का तप और त्याग-निष्ठ जीवन-यापन, और नवप्लेटोइक चिन्तन की प्रभावना : विशेषकर सर्वेश्वरवाद और प्रत्येक जीव-अजीव में ईश्वर के प्रत्यक्षत्व को मानना। यहीं से वास्तव में आविर्भूत हुआ यह बोधभाव कि प्रेम तो यथार्थ में एक आध्यात्मिक आकर्षण है। फिर तो जनम आया यह विश्वास ही कि प्रेम ही वस्तुतः विश्व का आधार-मूल है और कि प्रत्येक जीव निखिल विश्वात्मा का ही अंश है। इसीलिए फिर उसमें एकमेक हो जाने के लिए उसे आकुलता भी हुआ करती है। इस प्रेमभाव की, साकार से निराकार तक, कई अवस्थाएँ रहती हैं। फ़ारसी काव्य में इस भाव को बड़े भावुक रूप में प्रकट किया गया है। स्वभावतः धर्म का अर्थ फिर, भावनात्मक भक्ति-विभोरता तक पहुँचता हुआ, ईश्वर-प्रेम हो चला, और व्यक्ति की आध्यात्मिक एषणा हो उठी पर्याय भावोन्माद की, या कहें तो 'इश्क़' की। ईश्वर-प्रेम का वर्णन भी मानवीय प्रेम की भाषा ले चला और तदनुरूप प्रतीकों का भी व्यापक प्रयोग किया जाने लगा। सूफ़ी लोग तो अपनी आध्यात्मिक भावनात्मकता और प्रेम-विभोरता के उद्दीपन के लिए संगीत और नृत्य तक का प्रयोग कर उठे। भारत में, अवश्य, सूफ़ीवाद पर वेदान्त, बौद्धधर्म और भक्तिधारा के प्रभाव आये। सूफ़ी-साधना एवम् सूफ़ीवाद के प्रचार ने यहाँ विभिन्न 'सूफ़ी सिलसिलों' का रूप ग्रहण किया। अवश्य पंजाबी भाषा में उसे अभिव्यक्ति केवल फ़रीद-उद्-दीन गंज-ए-शकर के ही द्वारा मिली।

'सलोक सेख फरीद के' शीर्षक से 'गुरु ग्रन्थ साहिब' में आयी 'शैख फ़रीद' की

तमाम उपलब्ध रचनाओं का अध्ययन करने पर प्रकट होता है कि इनमें न कोई कालक्रम है न विषयक्रम। जान पड़ता है ये लिखी ही समय-समय पर गयीं। अर्थात् जब मानव जीवन के किसी विशेष रूप, भाव, अथवा अपनी ही किसी भावानुभूति के द्वारा उनका अन्तर्मन झकझोरा गया, तब जो भाव-दशा छा आयी उसे ही फ़रीद के भीतर का कवि अभिव्यक्ति दे उठा।

फ़रीद को सूफ़ीवाद का प्रथमतम पंजाबी कवि ठीक ही माना जाता है। उनकी रचनाओं को पहली बार देखने पर तो धारणा यही बनती है कि वे निरे इसलामी संस्कृति के कवि थे। विषय ही जो इन रचनाओं के हैं: मुहम्मद के द्वारा दरशाया हुआ अल्लाह्, मसजिद में अदा की जाती नमाज़, फ़रिश्ते और बहिश्त-दोज़ख़, रोज़े, जज़ा, रूहों का जी उठना, दोज़ख़ का पुल पार करना, और 'शरीअ़त' के अनुरूप सामाजिक सदाचरण। किन्तु भीतर पैठने पर यह सारी 'इसलामियत' जैसे पीछे को खिंच जाती है और एक निखिल मानवतावाद सारे में छाया हुआ दीख चलता है। ऐसा दो कारणों से। एक यह कि फ़रीद ने मुहम्मद को कहीं भी अपना विषय नहीं बनाया: न उनके धर्मयुद्धों को न उनके मिशन की सफलताओं को। फ़रीद का तो इसलामी परचम के तमाम में फहराने से मानो सरोकार ही नहीं। आलिम या क़ाज़ी भी वे हैं नहीं कि इसलाम की हिमायत करें और दूसरे धर्मों की हिकायतें कहते फिरें। दूसरे यह कि 'शरीअ़त' के किसी पहलू का फ़रीद कहीं उल्लेख भी करते हैं तो उनकी दृष्टि मानव के कष्ट और संघर्ष की दिशा में होती है, उसके धर्मान्तरण की ओर नहीं। वे स्वयम् भी सामने आते हैं तो बड़े धर्मनिष्ठ व्यक्ति के ही रूप में, जो एक-एक जनमानव को ईश्वराभिमुख बना देने को आकुल है: मगर क़ुरान के ख़ुदा के ही प्रति नहीं। फ़रीद के काव्य का मुख्य विषय है: मानव और आध्यात्मिकता। घड़ी-पल उन्हें चिन्ता है तो मानव की, धरती पर उसके चार दिन की, उसके अनिश्चित जीवन और चिरदिन-व्यापी मृत्यु-भय की, निर्वंश जनसमूह के दुर्दिन और भूख की, उसे घेरे आयी निरंकुश अन्याय की, सत्ता और वैभव के चौंध-भरे सम्मोहन की, और अर्थहीन मायाचक्रों में समय के अनर्थकर विनाश की! फ़रीद ने सामाजिक और सदाचरण पर बल दिया, पर सभी धर्मों में तो यह समान रूप से विहित था। फिर, बल उन्होंने दिया भी तो विशेषकर इस-लिए कि वही तो आध्यात्मिक जीवन और जगत् की ड्योढ़ी भी है। फ़रीद प्रारम्भिक काल के सूफ़ियों में से थे, जो तप और त्याग की साधना करते हुए भी इसलाम से अभिन्न हुए रहे। इसलाम के कर्मकाण्ड पक्ष से, अवश्य, वे कुछ दिनों बाद विलग हो चले थे। इसलामी राज, अधिकारी वर्ग और क़ाज़ी-उलेमा वर्ग से भी किसी प्रकार का लेना-देना उन्होंने नहीं रखा। ये तमाम वर्ग तो, जैसा कहा जा चुका है, फ़रीद के सदा निन्दक रहे, और क्षति ही पहुँचाने के षड्यन्त्र रचा किये। इन्होंने तो फ़रीद और उनके परिवार का रहना तक दूभर कर रखा था। एकमात्र अपने धैर्य और

दृढ़ता के ही बल, फ़रीद इन विघ्नों से पार ले सके। फ़रीद नियम-बँधी इबादत करते और अनाहार तो यों भी न चूकता। पर यह सब उनकी तपोनिष्ठा का अंग-मात्र होता : अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए। इस प्रकार, धर्म के विषय में फ़रीद ने प्राणिमात्र के प्रति करुणा और प्रेम के ही सिद्धान्तों का पालन किया। या कह सकें तो, भक्तिमार्ग का ही अनुसरण किया। उनका प्रेम वास्तव में अपने प्रभु के प्रति उत्कट भक्तिभाव ही था। इसी के द्वारा उन्होंने भगवान् को अपना बना लेना चाहा, उसमें आत्मसात् हो जाना चाहा। फ़रीद का यह भाव सर्वग्राही भी था। इसके लिए कोई अपवाद कहीं था ही नहीं। वह तो बस प्रेमी-आराधक थे : अपने भगवान् के, और इसलिए समूची रची हुई उसकी सृष्टि ही के। ये विशिष्टताएँ ही उन्हें सूफ़ी बना उठीं, और यही भूमि भी हुई जो उनके और उस काल के कट्टर मुसलिमों के बीच एक विभेद का कारण बनी। फ़रीद का काव्य ज्यों-ज्यों पढ़ते हैं, उनका प्रियतम के प्रति असाधारण अनुराग मन पर अंकित होता आता है। वे उसे अन्तर की सम्पूर्ण लालसा के साथ प्राप्त करने को आकुल हैं। उसके लिए प्रकार-प्रकार के तप साधते हैं : 'चिल्लाह्-ए-माकूस' तक खींचते हैं। यही उत्कट प्रेमानुराग उनकी काव्य-रचनाओं में भी छलक आया है और उन्हें एक विलक्षण सूफ़ी कवि बना गया।

फ़रीद ने अपना सर्वप्रमुख कार्य यह समझा लगता है कि मानव को जीवन की क्षणभंगुरता के विषय में जाग्रत करे :

> फरीदा पंख पराहुणी दुनी सुहावा बागु ॥
> नउबति वजी सुबह सिउ चलण का करि साजु ॥ 79

कवि ने यहाँ संसार को एक सुन्दर उपवन से उपमित किया है जहाँ पाँखी आत्मा पाहुन की नाईं कुछ काल के लिए आती है, और काल का नियत अंक पूरा होते ही बरबस बिदा हो जाती है। दूसरे शब्दों में, संसार एक 'सरा' मात्र है। अतिथि यहाँ रात बिताता है और उजाले की दुन्दुभि बजते ही उसे चल देना होता है। कितना भी सुन्दर हो संसार : नियत काल से अधिक क्षण-भर की भी ठहरने की सोची तक नहीं जा सकती। बुद्धिमानी इसलिए इसी में है कि परलोक की चिन्ता रखें।

एक स्थान पर फ़रीद ने अप्रत्यक्ष रूप से विदा की नियति के प्रति ध्यान दिलाया है और, इस प्रकार, संसार को अस्थिरता प्रत्यक्ष करायी है :

> फरीदा किथै तैडे मापिआ जिन्ही तू जणिओहि ॥
> तैं पासहु ओइ लदि गए तू अजै न पतीणोहि ॥ 73

सचमुच ही कैसी विचित्रता है कि अपने सगों और मित्रों का आये दिन प्रयाण

होता देखते हैं, पर कभी जो मृत्यु को अपने से जोड़ते हों हम !

जीवन की नश्वरता को ही रेखांकित करने के विचार से फ़रीद ने बदलती ऋतुओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। कहा है उन्होंने कि समय अचूके आता है जब एकाएक पत्ती सूखकर झर जाती है और पेड़ निरंग नंगा रह जाता है। सचाई तो यह है कि सांसारिक वस्तुओं की नश्वरता उन्हें सभी कहीं दिखाई देती है :

फरीदा रुति फिरी वणु कंबिआ पत झड़े झड़ि पाहि ॥
चारे कुंडा ढूढढीआं रहणु कियाऊं नाहि ॥ 102

मृत्यु की आसन्नता को फ़रीद ने प्रकारान्तर से भी हृदयंगम कराया है, जब वे आगे खड़ी जरावस्था, और उससे जुड़ी अशक्तताओं का उल्लेख करते हैं। चार श्लोक हैं इस विषय पर उनके, और प्रत्येक का वही कथ्य है : दबे पाँव बढ़े आते दिन-बरस, अंगों की जीर्णता, और सबका वही एक अन्त—अनिवार, अटल। फ़रीद को अचरज है तो केवल इसका कि मनुष्य फिर भी जीवन की सुख-वासनाओं से मुँह नहीं मोड़ता। यह नहीं समझना चाहता कि सौ बरस भी जीने के बाद काया तो अन्त में धूल ही होनी है :

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह ॥
जे सउ वरिआ जीवणा भी तनु होसी खेह ॥ 41

चलण चलण रतन से सुणी अर बहि गए ॥
हेड़े मुतीधाह से जानी चलि गए ॥ 77

फरीका सिरु पलिआ दाड़ी पली मुछां भी पलीआं ॥
रे मन गहिले बावले माणहि किआ रलीआं ॥ 55

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूंगर भविओम्हि ॥
अजु फरीदे कूजड़ा सै काहां थीओमि ॥ 20

और अन्त में,

देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ॥
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूरि ॥ 9

वृद्धावस्था एक चेतावनी होती है कि जीवन का अन्त अब आ लगा। पर फ़रीद इससे न भग्नाश होते हैं न उत्साह ही खो बैठते हैं। वे तो और अधिक आग्रह बाँध उठते हैं कि इस 'असावधान और अबोध' मानव को समय रहते चेत उठना

चाहिए। जीवन-काल सीमित है, आगे जरा और मृत्यु हैं : क्यों तब हाथ के अनमोल बरसों को नष्ट करें ? और शैख़ फ़रीद, राग सुही ललित में बंधे, एक सशक्त और मर्म-छूते गीत में, बीते जाते युवा वर्षों और खोये-गँवाये सुयोगों की क्षति को स्वर दे उठते हैं :

बेड़ा बंधि न सकिओ बंधन की बेला ।।
भरि सरवरु चब ऊछलै तब तरणु दुहेला ।।
हथु न लाइ कसुंभड़ै जलि जासी ढोला ।। 1
इक आपीनै पतली सहकेरे बोला ।।
दुधा थणा न आवई फिरि होइ न मेला ।। 2
कहै फरीदु सहेलीहो सहु अलाएसी ।।
हंसु चलसी डुंमणा अहि तनु ढेरी थीसी ।। 3

उपर्युक्त रचना में फ़रीद ने ईश्वर-विमुख प्राणी की तुलना तूफ़ानी महासागर में पड़ी पतवारहीन नैया से की है। समय रहते कुछ न करने से अन्त में विनाश निश्चित है। मनुष्य सांसारिक सुखों में लिप्त पड़ा है। उसे नहीं पता कि यह तो चिर-चंचल क्षणों की माया मात्र है जो कुसुंभी की नाईं सूने में ही मुरझ रहती है। प्रेम और यौवन भी बीत रहेंगे : सदा-सदा के लिए। अनुशासी गृहपति निधि के इस दुर्व्यय को देखता है। फिर तो एक दिन आयेगा ही जब प्राणों को पंख ले उड़ेंगे और काया धूल में मिल रहेगी। सचमुच, बड़ा भव्य गीत है यह फ़रीद का ! शब्द-शब्द ओजस्क और चित्रणा तो इतनी प्राणवान् कि मानव को क्षणजीवी भोगमाया से सावधान किये बिना रहे नहीं कि आत्मोद्धार के इस हाथ आये सुअवसर को गँवा न दे !

एक अन्य श्लोक में फ़रीद ने खोये हुए सुअवसर और उसके फिर कभी लौटकर न आने की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है :

जां कुआरी ता चाउ वीवाही तां मामले ।।
फरीदा एहो पछोताउ वति कुआरी न थीऐ ।। 63

भाव इतना ही है कि मुक्ति के जतन करने का जीव को एक अवसर मिला, उसे भी गँवा दिया तो और तो मिलने से रहा।

फ़रीद को बड़ा पछतावा तो इस बात का है कि उनके दिन इतने इने-गिने हैं, इसका उन्हें भान होता तो जीवन को यों लापरवाही से बरबाद न होने देते :

फरीदां जे जांणां तिल थोड़ड़े संमलि बुकु भरी ।।
जे जाँणां सहु नंढड़ा तां थोढ़ा माणु करी ।। 4

इसी बात को एक अन्य उपमा के सहारे भी रेखांकित करते हैं :

जे जांणां लड़ु छिजणा पीडी पाईं गंढि ।।
तै जेवडु मै नाहि को सभु जगु डिठा हंढि ।। 5

ऊपर पहले सलोक में 'तिल' के दानों से संकेत साँसों की ओर है: कि ये गिनी-गिनायी हैं इसलिए सँभालकर ही खरचनी चाहिए। दूसरी पंक्ति में 'वर' से अभिप्राय 'ईश्वर' से है: फ़रीद को आंतरिक पीड़ा है कि उनके 'वर' ने स्वयम् तरुण होने के कारण उन्हें अपने प्रेम का अधिकारी नहीं गिना। सच तो गर्वी इन्हें ही नहीं होना था।

दूसरे सलोक में फ़रीद कहते हैं कि सांसारिक मोहों में पड़कर प्रीतम से गाँठ-जोड़ ही शिथिल हो रहेगा, इसका यदि बोध होता तो अपने प्रेम की गाँठ को खूब कसा होता। क्योंकि सब कहीं भटककर भी उस जैसा तो और दिखा नहीं !

इन अनुच्छेदों में फ़रीद ने अपने हितकर बरसों की बरबादी पर पछतावा प्रकट किया है और जीवन के वृथा अभिमान पर क्लेश। प्रीतम के प्रेम की क्षति का उन्हें दुःख है, पर साथ ही इस प्रतीति के भी वे धनी हो सके कि सर्वोपरि उनका प्रभु ही है। दूसरे शब्दों में, उससे बढ़कर कहीं कोई हो ही नहीं, तब जीवन को उसकी ही साधना में समर्पित कर देना चाहिए।

फ़रीद ने जीवन का समूचा रूप खुली आँखों से देखा था। जीवन की अल्प-कालिकता उन्हें चकितकर नहीं लगी, चकितकर लगा यह कि बड़े-बड़े सुलतान और नायकगण भी टिके नहीं, जिन्हें अपने वैभव का गर्व था, और इनके राजपाट और महल-दुमहले तो धूल में मिले ही।

पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड ।।
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड ।। 45

सच तो, जीवन स्वयम् यदि वृथाभिमानों का भी वृथाभिमान है और अन्ततः मृत्यु में ही शेष होना है, तब इन महलों और राजमहलों का कौन अर्थ, जिनसे हम इतना-इतना चिपटे होते हैं ? उत्तर है :

फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चितु ।।
मिटी पई अतोलवी कोई न होसी मितु ।। 57

और ये रूप-सौन्दर्य ? नितान्त अल्पकालिक और नश्वर ये तो ! बड़ी व्यंग्य-भरी टिप्पणी आँखों पर करते हुए कहते हैं फ़रीद कि एक दिन जिन्हें काजल तक का स्पर्श सहन नहीं था, वे ही आँखें मृत्यु हो जाने पर पाँखियों की कोटर बनती हैं।

शेख फ़रीद या ख्वाजा फ़रीद-उद्-दीन, मसऊद गंज-ए-शकर, **बाबा फ़रीद** के रूप में प्रसिद्ध एवं पूज्य रहे हैं। उनका जन्म 1173 ई. के रमजान महीने में पंजाब के कोठवाल गाँव (अब पाकिस्तान में है) मे हुआ था। वे 12वीं शताब्दी के दौरान पंजाब के सबसे महान संतों में से एक थे। उन्हें पंजाबी भाषा का पहला कवि कहना ग़लत नहीं होगा क्योंकि बाबा फ़रीद की प्रेरणादायी और जीवन संबंधी कविताएँ सिखों के धर्मग्रंथ *श्री गुरु ग्रंथ साहिब* में भी संकलित की गई हैं।

उनका सारा जीवन तपश्चर्या तथा ध्यान में ही बीता। उन्होंने पंजाबी, अरबी, फ़ारसी और अन्य भाषाओं में पद रचना की। पंजाबी में सृजित इन रचनाओं से गुरु नानक बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने इनकी भरपूर प्रशंसा की। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने आनेवाली पीढ़ियों के लिए इन पदों को सुरक्षित रखने की इच्छा व्यक्त की। बाबा फ़रीद का 'सलोक' बौधिक गहनता और मानवीय संवेदना के संस्पर्श से दीप्त है।

प्रस्तुत विनिबंध के लेखक **बलवंत सिंह आनंद** (1920-2013) ने *श्री गुरु ग्रंथ साहिब* में संकलित बाबा फ़रीद के पदों के काव्य-गुण का विवेचन किया है। साथ ही, इसमें अरब और फ़ारस के देशों में सूफ़ीवाद के विकास और भारत में सूफ़ी सिलसिले के रूप में इसके आगमन की संक्षिप्त रूपरेखा भी प्रस्तुत की है।

ISBN 978-81-260-1582-5

9 788126 015825

साहित्य अकादेमी

₹ 50/-

www.sahitya-akademi.gov.in